

25-

अमती सपा छुंगलू ने  
दी। उसी ०००००० का  
फोटोस्टेट प्रस्तुत है ॥  
23.4.09  
कै. एम.

कश्मोरी

ललदयद

( नागरी लिप्यन्तरण-सहित हिन्दी अनुवाद )

अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार

डॉ० शिवनकृष्ण रैणा

संस्कृत अनुवाद

आचार्य श्री रामजी शास्त्री

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

वर्तमान पता -- मौसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६०२०

N. Ram - Laxmi & Co.





'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।  
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥'

प्रथम संस्करण— जुलाई, १९७७ ई०

पृष्ठसंख्या—  $15 \times 22 \div 5 = 120$

मूल्य— १५.०० रुपये

मुद्रक

बाणी प्रेस

'प्रकाशक निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

## भूमिका

एक दिन लखनऊ से भेजा गया एक पत्र मुझे मिला, जिसका सारांश यह था 'मैं कोटद्वार होते हुए दिल्ली जाना चाहता हूँ, ताकि आपसे मिल सकूँ।' प्रेषक थे श्रीयुत नन्दकुमार अवस्थी, जिनके शुभ नाम तथा महत्वपूर्ण काम से मैं तब तक बिल्कुल अपरिचित ही था और मैंने यह लिखकर उन्हें रोकने का प्रयत्न किया कि लखनऊ से तो दिल्ली का सीधा रास्ता है, व्यर्थ ही अपव्यय क्यों करते हैं; पर वे नहीं माने और अपने एक सहयोगी के साथ कोटद्वार पधारे।

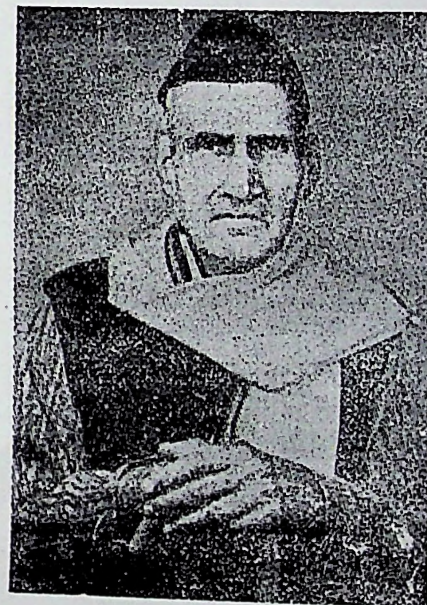
श्री नन्दकुमार अवस्थी जी से मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई, पर साथ-साथ लज्जा का भी अनुभव हुआ कि उनकी अद्भुत सेवाओं से मैं अब तक क्यों अपरिचित रहा ?

जब श्री अवस्थी जी ने ढाई सौ रुपये के मूल्य के १४ ग्रन्थ मुझे भेंट किये तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने उनसे निवेदन भी किया कि उनके ग्रन्थ मैं किसी

पुस्तकालय से खरिदवा दूंगा, पर वे नहीं माने और केवल इतना ही कहा— "यदि आप अपने पास आने वालों को यह ग्रन्थ दिखला दिया करें, तो मेरे लिए यही पर्याप्त होगा।"

तब से मैं उनके उस आदेश का पालन करता रहा हूँ और नतीजा यह हुआ कि मेरे यहाँ पधारने वाले अनेक व्यक्ति भी मेरी तरह श्री अवस्थी जी के प्रशंसक बन गये हैं।

हमारा देश बड़ा विस्तृत है और उसमें अनेक भाषाओं के बोलने वाले व्यक्ति रहते हैं। उनमें पारस्परिक विचार-परिवर्तन के लिए किसी सम्पर्क भाषा की जरूरत थी और हिन्दी को वह गौरवपूर्ण स्थान मिल भी रहा है, पर उससे भी अधिक उपयोगी कार्य है समान लिपि का होना। जस्टिस शारदाचरण मित्र ने बहुत वर्षों पहले इसके महत्व को मण्डित





श्री अवस्थी के सम्पादकत्व में 'वाणीसरोवर' त्रैमासिक पत्र प्रकाशित होता है। इसमें उपर्युक्त ग्रन्थों में से अनेक के ८-८ पृष्ठ धारावाहिक दिये जाते हैं। हिन्दी के अनुपम ग्रन्थ 'रामचरितमानस' के मूलपाठ एक अनुवाद सहित ओड़िया, बंगला और संस्कृत संस्करण भी प्रकाशित हो रहे हैं। सम्प्रति श्री अवस्थी कौरानिक कोश (पठनक्रम), कौरानिक कोश (वर्णानुक्रम), और एक वृहत् नागरी उर्दू हिन्दी कोश की तैयारी में रत हैं। इन कोशों में अरबी-फ़ारसी के संदेहपरक (मुश्तबहुसोत) अक्षरों को नागरी लिपि में प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे सीन, से, साद और जीम, जाल, जे, ज़ाद, जो; इनको पृथक् व्यक्त न करने से शब्दों के अर्थ का अनर्थ अथवा विपरीत अर्थ निश्चित है।

कुर्आन शरीफ़, गुरुग्रन्थ साहिब, रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों का ही सानुवाद लिप्यन्तरण क्यों? इसके समाधान में श्री अवस्थी का कथन है कि मानव को श्रेष्ठमानव बनाने, सदाचार प्रदान करने, मानव मात्र में पार्थक्य (बिलगाव) की भावना को दूर कर विश्वबन्धुत्व की सद्भावना को जगाने में ये ग्रन्थ ही समर्थ हैं। इस प्रकार के पूज्य ग्रन्थों को जनता अपने द्रव्य से खरीदकर, श्रद्धा से और अनेक बार पढ़ती और उनसे प्रेरणा लेते नहीं सकती है। फिर, कथानक सुपरिचित होने और अपनी सुपरिचित लिपि में प्राप्त होने पर संस्कृत के तत्सम-तद्भव तथा यत्न-तत्न तैरकर पहुँचनेवाले क्षेत्रीय शब्दों की सहायता से दूसरी भाषाएँ भी सरलता से बोधगम्य होती हैं। विना कटुता और स्पर्धा के राष्ट्रभाषा तथा क्षेत्रीय भाषाओं की समान उन्नति और विस्तार, एवं लिपि और भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय-एकीकरण, इन जाने-सन्माने शाश्वत ग्रन्थों के बल पर ही सम्भव है।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस महान यज्ञ के मार्ग में उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा, जिनमें आर्थिक कठिनाइयाँ मुख्य थीं। इसमें केवल उन्हें ही नहीं, उनके घर वालों को भी बहुत परेशानी उठानी पड़ी। फिर भी कुछ सहायक मिलते रहे और उनके सहयोग से मिशनरी कार्य अब भी चल रहा है।

श्री अवस्थी जी में कृतज्ञता की भावना भरपूर मात्रा में पाई जाती है और वे अपने प्रति उपकार करनेवालों को भूलते नहीं। उन्होंने स्वयं बन्धुवर श्रीनारायण जी चतुर्वेदी, प्रमुख उद्योगपति शेरवानी साहब तथा श्री जयदयाल जी डालमिया की सहायता का उल्लेख बातचीत के सिलसिले में कई बार किया।

जो कार्य अकेले श्री अवस्थी जी ने कर दिखाया है उसे कोई साधन-सम्पन्न संस्था भी मुश्किल से कर सकती थी। आज के युग में देश में कितने

व्यक्ति हैं जो इतनी लम्बी अवधि तक एक पुनीत कार्य में निस्पृह लगे रहते हैं! हर्ष की बात है कि जनता तथा सरकार भी धीरे-धीरे उनके कार्य के महत्व को समझने लगी है। सन् १९७५ ई० में नागपुर विश्व हिन्दी सम्मेलन में उनको सम्मानित किया गया और भारत सरकार ने १९७६ ई० में उन्हें पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया था। पर यह पवित्र कार्य बहुत मन्द गति से हो रहा है। कम से कम हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों का यह कर्तव्य था कि वे अवस्थी जी को प्रचुर आर्थिक सहायता देते और केन्द्रीय सरकार का भी यही कर्तव्य है। साहित्य जगत में भी वे सर्वोच्च सम्मान के अधिकारी हैं।

भविष्य में जो कार्य श्री अवस्थी जी करना चाहते हैं उनकी चर्चा तो यह हुई। अब इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रचुर साधन भी चाहिये। यह कोई विवाद-ग्रस्त ग्रंथ तो हैं नहीं, और सभी जातियों तथा धर्मों के मनुष्य और सभी राजनैतिक दल इसमें सहायक हो सकते हैं। यह जानकर हमें आश्चर्य हुआ कि कुर्आन के सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण की प्रतियाँ हिन्दी-भाषा-भाषियों की अपेक्षा अहिन्दी-भाषा-भाषियों में कहीं अधिक बिकीं।

श्री अवस्थी जी की संस्था 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के सम्पूर्ण कार्य की अधिकारपूर्ण समीक्षा तो अनेक भाषाओं के विद्वान् ही कर सकते हैं और यह काम हमारे बूते का नहीं।

सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक एमर्सन का कथन है—“संस्थाएँ तो मनुष्य की विस्तृत छाया मात्र होती हैं” (An institution is the lengthened shadow of a man.); और इस प्रकार भुवन वाणी ट्रस्ट भी श्रीनन्दकुमार अवस्थी के प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाया मात्र है।

अभी लगभग एक मास पूर्व अवस्थी जी का पत्र आया जिसमें ट्रस्ट द्वारा नव प्रकाशित कश्मीरी भाषा की 'लल् द्यद' पर भूमिका लिखने का अनुरोध था। किसी पुस्तक की भूमिका लिखते समय प्रतिपाद्य विषय वह पुस्तक ही होती है। मुझे कश्मीरी भाषा का ज्ञान नहीं है, इसलिए मैंने युवराज डॉ० कर्णसिंह जी अथवा अन्य दो-एक कश्मीरी भाषा के विद्वानों से भूमिका लिखने के लिए पत्र लिखना चाहा। किन्तु श्री अवस्थी ने पुनः अनुरोध किया कि भुवन वाणी ट्रस्ट के मिशन में भूमिका का प्रतिपाद्य विषय पुस्तक-विशेष नहीं है। प्रतिपाद्य विषय तो भाषाई सेतुकरण का उद्देश्य और उसकी पूर्ति के लिए किया जा रहा कार्य है।



लिया था, पर वे उसे कार्यरूप में अधिक आगे बढ़ा नहीं सके। भाषाई सेतुबन्ध का यह पवित्र कार्य श्री नन्दकुमार अवस्थी जी ने सफलतापूर्वक किया है और उन्हें 'सांस्कृतिक इंजीनियर' की उपाधि दी जा सकती है।

मध्यम श्रेणी का यह परिवार आज्ञादी की लड़ाई के फल-स्वरूप तस्त रहा। सन् ४२ में उत्तरप्रदेश और बिहार के क्रान्तिकारियों का इनके यहाँ नित्य का जमघट रहा। श्री अवस्थी के छोटे भाई श्री कृष्णकुमार अवस्थी (इस समय आयुर्वेदाचार्य बी. आई. एम. एस.) अपनी १६ वर्ष की अवस्था में ही डी. आई. आर. में जेल भेज दिये गये। ये स्व० श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के विश्वस्थ अनुयायी थे। अन्त में आम्स एक्ट में इनको सजा हुई।

आज्ञादी प्राप्त होने के बाद श्री अवस्थी ने लेखन-प्रकाशन का सफलता से काम चलाया। किन्तु सन् १९४७ से ही जन्मजात स्वभाव-वश भाषाई-सेतुबन्धन के राष्ट्रीय कार्य में लग गये और निजी प्रकाशन का काम धीरे-धीरे चौपट हो गया। बंगला कृत्तिवास रामायण और कुर्आन शरीफ के सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण को पहले हाथ में लिया। अरबी कुर्आन की विशिष्ट ध्वनियों और शास्त्रीय पद्धति की नञाकतों के जटिल काम को नागरी लिपि में उतारने, उन अक्षरों और चिह्नों को गढ़ने और फिर ग्रन्थ को छापने में २० वर्ष लगे। यह लगभग एक पीढ़ी का समय है, जिसमें व्यक्ति कार्यक्षेत्र से प्रायः अवकाश प्राप्त कर लेता है। इस बीस वर्ष के कार्यकाल में आय का स्रोत बन्द हो जाने से श्री अवस्थी सपरिवार दयनीय आर्थिक संकट से गुजरते रहे। किन्तु उनकी अनन्य निष्ठा और लगन ने कार्य को सर्वांग सफलता प्रदान की। कुर्आन के अरबी पाठ को किसी अन्य लिपि में लिप्यन्तरित करना इस्लामी धर्मशास्त्र को मान्य नहीं, और उनके पास इसके पक्ष में उचित आधार हैं। किन्तु श्री अवस्थी ने जिस ईमानदारी, अनन्यता और परिपूर्णता से इस कार्य को प्रस्तुत किया, उसके परिणाम-स्वरूप इस्लामी धर्माचार्यों और हिन्दी-अहिन्दी-भाषी समग्र जनता ने इस महत्वपूर्ण कार्य को आशातीत सम्मान प्रदान किया।

इस अपूर्व स्वागत से प्रोत्साहित होकर अब अवकाश लेने के बजाय, उन्होंने १९६९ ई० में 'भुवनवाणी ट्रस्ट' (पञ्जीकृत) की स्थापना करके विश्व की, और प्रमुखतः भारतीय भाषाओं के सत्साहित्य को नागरी लिपि में सानुवाद प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया। और आज इस अल्प अवधि में विविध भाषाविदों के सहयोग से इतना विशाल सत्साहित्य जनता के सामने प्रस्तुत कर दिया है जो सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं में भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। श्री अवस्थी निजी सारे साधनों को ट्रस्ट हेतु अर्पण करके, इस ७० वर्ष

की आयु में भी अहर्निश भाषाई-सेतुबन्धन के पुनीत कार्य में अवैतनिक लगे हुए हैं। उनके सामान्य जीवन-निर्वाह का भार भी ट्रस्ट पर नहीं है। उल्लेखनीय है कि श्री अवस्थी के एकमात्र पुत्र चिरञ्जीव विनयकुमार अवस्थी उनके, एवं ट्रस्ट के कार्यों में पूरा सहयोग दे रहे हैं। अरबी, बंगला, असमिया, उर्दू, मलयाळम और तमिळ के नागरी लिप्यन्तरण में उन्होंने पर्याप्त कुशलता प्राप्त की है। ट्रस्ट की एक विद्वत्परिषद् है, और उसको अनेक भाषाविदों का अनन्य सहयोग प्राप्त है।

अभी तक जो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, और जो यन्त्रस्थ हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

ट्रस्ट की स्थापना से पूर्व (अरबी) कुर्आन शरीफ—श्री अवस्थी की निजी आय का साधन, और (बंगला) कृत्तिवास रामायण (ट्रस्ट को समर्पित); तथा ट्रस्ट के कार्यकाल में (मलयाळम) महाभारत, (कन्नड) रामचन्द्र चरित पुराण जैन सम्प्रदाय, (कश्मीरी) रामावतार चरित, (कश्मीरी) लल् द्यद, (नेपाली) भानुभक्त रामायण, (राजस्थानी) रुक्मिणी मंगल, (मराठी) श्रीरामविजय, (तमिळ) तिरुक्कुरळ, (अरबी) हदीस जादे सफ़र, (उर्दू) शरीफ़जादः, (तेलुगु) मोल्ल रामायण, (फ़ारसी) सिर्रे अकबर—दाराशिकोह कृत उपनिषद्-भाष्य प्रथम खण्ड, (गुरमुखी) श्री जपुजी सुखमनी साहब।

उपर्युक्त सम्पूर्ण हो चुके ग्रन्थों के अतिरिक्त, निम्न ग्रन्थों का मुद्रण-प्रकाशन चल रहा है:—

(तमिळ) कम्ब रामायण, (बंगला) कृत्तिवास रामायण उत्तरकाण्ड, (मलयाळम) अध्यात्म रामायण, (गुजराती) गिरधर रामायण, (मराठी) श्री हरिविजय, (असमिया) माधव कंदली रामायण, (तेलुगु) रंगनाथ रामायण, (तेलुगु) पोटन्न कृत महाभागवतमु, (ओड़िया) बेदेहीश बिलास, (सिन्धी) स्वामी, शाह, सचल की त्रिवेणी, (उर्दू) गुज़श्तः लखनऊ, (फ़ारसी) सिर्रे अकबर २, ३ खण्ड, और (गुरमुखी) श्री गुरुग्रन्थ साहिब का बृहद् धर्मग्रन्थ। ध्यान रखने की बात है कि इन सभी ग्रन्थों में यथावश्यकता अनुवाद के अतिरिक्त, नागरी लिपि में मूलपाठ भी दिया गया है; और प्रायः ये सभी ग्रन्थ विशाल हैं। विविध भाषाओं के विशिष्ट स्वर-व्यञ्जन, जो नागरी लिपि में अनुपलब्ध हैं, उनको सुपरिचित ढंग पर गढ़ कर परिवर्द्धित नागरी लिपि में सम्मिलित किया गया है। यह साधन देश में अन्यत्र किसी प्रेस में उपलब्ध नहीं है; और इसका सारा श्रेय श्री अवस्थी जी को है।



अवस्थी जी की बात में बल था। मैंने भूमिका लिखना स्वीकार कर लिया। उसी के फलस्वरूप भुवन वाणी ट्रस्ट और उसके प्रतिष्ठाता श्री नन्दकुमार अवस्थी के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवरण, जानकारी के अनुरूप मैंने प्रस्तुत किया है। वैसे, पवित्र उद्देश्य, संकल्प, श्रम और उपलब्धि की दृष्टि से उनकी जितनी सराहना की जाय, कम है। जहाँ तक 'लल् द्यद' की पुस्तक का सम्बन्ध है, प्रकाशकीय परिशिष्ट और अनुवादक महोदय के वक्तव्यों में पर्याप्त सामग्री मौजूद है। पुस्तक में दार्शनिक कवयित्री लल के १७९ वाक्यों का नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी गद्यानुवाद, और संस्कृत पद्यानुवाद दिया गया है। कश्मीरी भाषा की मौजूदा लिपि फ़ारसी है। किन्तु स्वरों के उच्चारण और प्रयत्नों में कश्मीरी भाषा के कुछ अपने रूप हैं। एक वर्णमाला चार्ट है जिसमें कश्मीरी लिपि के अक्षरों तथा उसकी विशिष्ट आ'राब (मात्राओं) को नागरी लिपि में प्रस्तुत करते हुए, उनके विशिष्ट उच्चारण पर भी प्रकाश डाला गया है। अनुवाद के साथ मिलान करने पर स्पष्ट पता चलता है कि अधिकांश शब्दों का मूल उद्गम संस्कृत भाषा ही है। अलबत्ता कालान्तर में फ़ारसी-अरबी शब्दों का सन्निवेश होता रहा है। भूमिका का प्रतिपाद्य विषय भुवन वाणी ट्रस्ट और श्री अवस्थी का कार्यकलाप है। प्रस्तुत पुस्तक 'लल् द्यद' उस कार्य-समूह की एक इकाई मात्र है।

अन्त में श्री अवस्थी और भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे पुनीत वाणीयज्ञ की उत्तरोत्तर सर्वाङ्ग सफलता की कामना करता हूँ।

उन्होंने घर बैठे मुझे अपने दर्शन दिये तदर्थ मैं उनका बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ।

बनारसी दास

दिनाङ्क २३ मार्च, १९७७

[डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी (पद्मभूषण)]

कोटद्वार, गढ़वाल



गगन      ज़ुय      बूतल      ज़ुय  
ज़ुय      द्यन      पवन      तु      राय,  
अरुग      ज़ंदन      पोश      पोन्न्य      ज़ुय  
ज़ुय      छुख      सकलय      तु      लांग्यजि      क्याह

(तू ही गगन है, तू ही भूतल है। तू ही दिन, पवन और रात है।  
अर्घ्य, चंदन, पुष्प पानी भी तू ही है। तू ही सब कुछ है तो फिर  
(हे देव ! ) तुझे क्या चढ़ाऊँ ? —लल् द्यद।

कश्मीर की दार्शनिक

आदि - कवयित्री लल् द्यद

(सुश्री लल्लेश्वरी) के वाखों (वाक्यों)

का यह सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण

उसी देवी की पुण्य स्मृति में

भगवदर्पण।

नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति

भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३



## विषय-सूची

विषय	पृष्ठसंख्या
भूमिका—डॉ० बनारसी दास चतुर्वेदी (पद्मभूषण)	क-च
समर्पण	१
विषय-सूची	२
प्रकाशकीय परिशिष्ट	३
अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार का प्राक्कथन	९
लल् द्यद : जीवन और कृतित्व	११
कश्मीरी देवनागरी वर्णमाला चार्ट	२३
लल् द्यद — वाख (वाक्य-) संग्रह	२५

## प्रकाशकीय परिशिष्ट

विषय-प्रवेश—

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, राष्ट्र के विधान की रचना हुई। उसमें मनीषियों ने राष्ट्र की व्यवस्था में, भाषा और लिपि के संबंध में भी निर्णय लिया। भारत जैसे विशाल देश के विभिन्न अञ्चलों में विभिन्न भाषाओं और लिपियों का प्रचलन है। वे सभी भाषाएँ बहुमूल्य साहित्य से संपन्न हैं, और उस समग्र साहित्य में एक-भारतीय और एक-मानवीय झलक है। भाषा समझने की कोई बड़ी कठिनाई नहीं है। प्रायः सबमें संस्कृत का प्रचुर शब्द-भण्डार, तत्सम अथवा तद्भव रूप में विद्यमान है। अंग्रेजी तथा अरबी और फ़ारसी के शब्द भी पर्याप्त संख्या में समान रूप से सभी भाषाओं में पैठ चुके हैं। गुरुमुखी, सिन्धी आदि प्राचीन साहित्य को आज के वहाँ के निवासियों की अपेक्षा, हिन्दीभाषी अधिक सरलता से समझ सकते हैं। सभी भाषाओं के क्षेत्रीय शब्द यातायात, एक-राष्ट्रीयता और एक-संस्कृति होने के फलस्वरूप आपस में घुल-मिल गये हैं। यह भी तथ्य ही है कि देश के किसी भी अञ्चल में जाने पर ठूटी-फूटी हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा की मिली-जुली बोली से काम, आज ही नहीं, पुरातन से चलता आ रहा है। अलबत्ता लिपि की कठिनाई जरूर है। यह किसी व्यक्ति के वंश की बात नहीं कि वह भारत में व्यवहृत २०-२२ लिपियों को सीख ले और तब उन सभी लिपियों से सम्बन्धित भाषाओं के वाङ्मय और सत्साहित्य से लाभान्वित हो सके, अथवा भाषा के सेतु द्वारा परस्पर घुल-मिल सके।

इसलिए विचारक-वृन्द सदैव इस पर एकमत रहा है कि इन सब भाषाओं को एक सूत्र में बाँधने के लिए एक जोड़लिपि को अपनाया जाय और उसके लिए देवनागरी लिपि ही अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त है। सारांश यह कि सारी लिपियों के सदैव फूलते-फलते रहने के अलावा, देवनागरी लिपि को भी, जोड़लिपि के तौर पर, अपनाया जाय; सभी भाषाओं के सत्साहित्य को नागरी लिपि में लिप्यन्तरित किया जाय। राष्ट्रीय एकीकरण को अक्षुण्ण रखने के लिए राष्ट्र की सभी भाषाओं का पवित्र साहित्य समस्त देश की सम्पत्ति बन जाय। यह जोड़लिपि का काम किसी समय ब्राह्मी लिपि द्वारा उपलब्ध था; आज आवश्यकता है कि नागरीलिपि को उस पुनीत उद्देश्य के लिए अपनाया जाय।

अस्तु। यह विचार मेरे मस्तिष्क में घूम रहे थे। राष्ट्रीय विधान



में भी उसी दिशा में निर्णय लिया गया। सन् १९४७ ई० से मैंने अन्य भाषाओं के देवनागरी लिप्यन्तरण का कार्य आरंभ किया। संयोग की बात कि विश्वविख्यात इस्लामी धर्मग्रन्थ 'क़ुर्आन' का सानुवाद लिप्यन्तरण प्रस्तुत करने की प्रथम अभिलाषा हुई। काम आरम्भ करने के बाद वह अनुमान से कहीं अधिक जटिल साबित हुआ। वैसे तो भारतीय भाषाओं के ही कई व्यञ्जनों और स्वरों के प्रतिनिधि रूपों का नागरी में अभाव है; किन्तु अरबी लिपि की तो अनेक ध्वनियों के समावेश से नागरी लिपि को परिवर्द्धित करने की आवश्यकता सामने आई। धर्मग्रन्थ होने के नाते अनेक शास्त्रीय बातों का भी ध्यान रखना जरूरी था। किसी न किसी प्रकार भगवान् की कृपा से वह भगीरथ कार्य सन् १९६९ ई० के आरम्भ में प्रकाशित होकर जनता के सामने आया। परिश्रम ठिकाने से लगा। देश की हर जमात ने उस श्रम की सराहना की, सब ने कद्र की। इसी बीच गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस से एक शती प्राचीन बंगला की लोकप्रिय 'कृत्तिवासी रामायण' के पाँच काण्डों का देवनागरी लिप्यन्तरण और (अवधी) हिन्दी में पद्यानुवाद भी मैंने प्रस्तुत किया।

इस २०-२२ वर्ष के सतत और क्लेशकर श्रम के उपरान्त, कुछ विश्राम मिला, यश मिला, सराहना मिली। विद्वान् और आम जनता, सर्वत्र इस श्रम के प्रति उपलब्ध समादर से उत्साह में वृद्धि हुई। फल-स्वरूप भाषाई सेतुकरण, एक भाषा का दूसरी भाषा में प्रतिविम्बीकरण, और राष्ट्रसमन्वय के उपर्युक्त पुनीत उद्देश्य के प्रति संकल्प प्रबलतर हो उठा। कुछ महीनों बाद ही, उसी १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' नामक पञ्जीकृत संस्था की स्थापना की। नागरी लिपि में परिवर्द्धन और देश में प्रचलित प्रायः सभी भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण का कार्य आरम्भ हुआ। ट्रस्ट का यह प्रयास देश में अद्वितीय है। देशी-विदेशी भाषाओं के अनेक ग्रन्थों का सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित हुआ। उसी योजना में कश्मीरी भाषा की यह दूसरी पुस्तक 'लल् द्यद' आज पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

#### लल् द्यद—

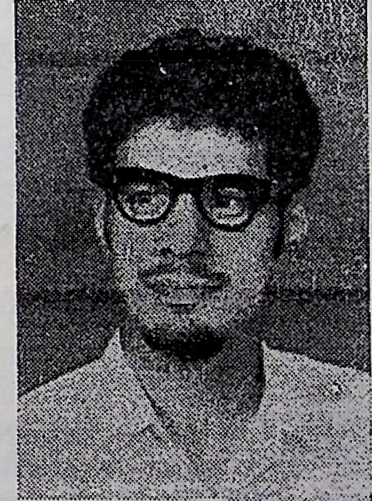
विभिन्न भाषाओं के सद्ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित करने की योजना में, गत १९७४ ई० में कश्मीरी भाषा का श्री प्रकाशराम कुर्यंग्रामी कृत 'रामावतार चरित' प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के मुद्रणकाल में ही, उसके अनुवादक और लिप्यन्तरणकार डॉ० शिवनकृष्ण रेणा ने कश्मीर की आदि कवयित्री, परमहंस देवी

लल्लेश्वरी के वाखों (वाक्यों), और उनके प्रति कश्मीर के हिन्दू-मुसलमान सब का सम्मान, इस पर जब-तब पत्रों में चर्चा की थी।

सुतरां किसी भाषा की एक पुस्तक का प्रकाशन समाप्त होते ही उस भाषा की दूसरी पुस्तक का सानुवाद लिप्यन्तरण का शुभारंभ कर देने के हमारे कार्यक्रम के अनुसार 'लल् द्यद' को हाथ में लेने की उत्कण्ठा हुई। डॉ० रेणा ने भी बड़ी तत्परता से लल् के १७९ वाखों का संग्रह संकलित कर उनका सानुवाद लिप्यन्तरण ट्रस्ट को भेज दिया। 'द्यद' कश्मीरी भाषा में दादी का ही रूपान्तर है। दादी आदरणीय वृद्धा के लिए भी प्रयुक्त होता है। 'लल् द्यद' पुस्तक का कलेवर जितना सामान्य है, उसके एक-एक 'वाख' का भाव उतना ही गहन और आत्मा को उद्बुद्ध करनेवाला है। उसका परिचय, 'लल् द्यद—जीवन और कृतित्व' में विद्वान् अनुवादक ने विस्तार से प्रस्तुत किया है।

#### अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार—

कश्मीरी भाषा की लोकप्रिय रामायण 'रामावतारचरित' एवं प्रस्तुत पुस्तक 'लल् द्यद' के सानुवाद नागरी-लिप्यन्तरणकार का पुष्कल परिचय इन पंक्तियों का अभीष्ट है। डॉ० शिवनकृष्ण रेणा का जन्म श्रीनगर कश्मीर में, भारत की आजादी की आखिरी लड़ाई के कीर्तिमान सन् १९४२ में २२ अप्रैल को हुआ। इस अल्पकाल में ही साहित्य-साधना की उल्लेखनीय परिधि तक वे पहुँचे। कश्मीरी विश्व-विद्यालय से १९६२ ई० में एम० ए० (हिन्दी) में प्रथम स्थान प्राप्त कर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से 'कश्मीरी तथा हिन्दी कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोधग्रन्थ लिखकर उन्होंने डॉक्टरेट प्राप्त की। उपरान्त, कश्मीरी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी



डॉ० शिवनकृष्ण रेणा

विभाग में अध्यापक, राजस्थान शिक्षा विभाग में हिन्दी के व्याख्याता, राजकीय कालेज, नाथद्वारा में हिन्दी-विभागाध्यक्ष, नार्थ रीजनल लैंग्वेज सेन्टर, पटियाला में कश्मीरी भाषा के व्याख्याता, और अब इस समय राजस्थान (जयपुर) में पुनः अपने पूर्व पद पर आसीन हैं। कश्मीरी भाषा, साहित्य, जीवन व



संस्कृति पर अनेक निबन्धों तथा कई पुस्तकों के रचनात्मक कार्य का श्रेय उनको प्राप्त है। भाषा-जगत् को इस तरह साधनाशील व्यक्तित्व से बड़ी आशाएँ हैं। भुवन वाणी ट्रस्ट उनके योगदान के लिए कृतज्ञ है।

संस्कृत अनुवाद—

‘लल् द्यद’ के वाक्यों के संस्कृत पद्यानुवाद के पीछे भी एक तथ्य है। १७९ पदों के इस संग्रह में लगभग ५० पदों का श्री राजानक भास्कर नामक एक प्राचीन विद्वान् द्वारा विरचित अति ललित संस्कृत पद्यानुवाद किसी समय प्रकाशित हुआ था। अब वह अप्राप्य है।



आचार्य श्री रामजी शास्त्री

के वरिष्ठ सदस्य हैं। माननीय शास्त्री जी का सुलभ संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

मध्यप्रदेश के मुरेना मण्डल, ग्राम देवगढ़ में कौशिक गोत्रीय, माध्यन्दिनी शाखान्तर शुक्लयजुर्वेदीय सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में पं० राम-रत्न मिश्र के सुपुत्र पं० रामजी ने जन्म लिया। ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम चूरू (बीकानेर) और पश्चात् श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज के संकीर्तन ब्रह्मचर्याश्रम, झूसी (प्रयाग) में अध्यापन एवं निर्वाण वेद विद्यालय, दारागंज प्रयाग में अध्ययन कर १९५० ई० में शास्त्री जी ने लखनऊ आकर निवास किया। व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। नव्य व्याकरण और दर्शनशास्त्र की भी परीक्षाएँ पास कीं। रामचरितमानस-गान, प्रवचन और रामायण, गीता, भागवत आदि के

ललेश्वरी-वाक्यों के साथ इन पदों को भी देने की इच्छा हुई, ताकि स्व० राजानक भास्कर की रचना का लोप न हो। किन्तु इस विचार के साथ ही यह समस्या उत्पन्न हुई कि कुछ पदों मात्र का संस्कृत श्लोकानुवाद देकर शेष पदों को कैसे विवस्त्र रखा जाय !

सत्कार्य में भगवान् सदैव दाहिने रहते हैं। सुप्रसिद्ध रामायणी विद्वान् साहित्याचार्य श्री रामजी शास्त्री ने शेष पदों का संस्कृत छन्दों में अनुवाद करके भुवन वाणी ट्रस्ट को अनुग्रहीत किया। लोकप्रसिद्ध आचार्य जी, हमारी विद्वत्-परिषद्

माध्यम से धार्मिकता-प्रचार में जीवन-रत। आपकी लिखी एवं प्रकाशित पुस्तकों में ‘मानस की मणियाँ’ ने लोचप्रसिद्धि प्राप्त की है। वैष्णव दीक्षा में दीक्षित, रामोपासक, आजीवन ब्रह्मचारी, ‘विद्या ददाति विनय’ को चरितार्थ करनेवाले इन सदाशय विद्वान् का सहयोग पाकर भुवन वाणी ट्रस्ट कृतकृत्य है।

कश्मीरी भाषा—

भारतीय भाषा, सभ्यता और संस्कृति पर शोध सम्बन्धी लेखन के समय, पाश्चात्य विद्वानों की पुस्तकों और शोधों का सहारा लेना, उनके उद्धरण देकर मत की पुष्टि करना, भारतीय विद्वानों के एक वर्ग में यह गौरव की बात समझी जाती है। पाणिनि का कश्मीर प्रदेश, विद्वानों, ब्राह्मणों और संस्कृत का, सिन्धु से भी अधिव प्राचीन केन्द्र माना जाता है। किन्तु यह पाश्चात्यवादी भारतीय विद्वान् कश्मीरी भाषा को संस्कृत-जन्य न कह कर दरद और पिशाच की पुत्री घोषित करता है।

अधिक लिखने का स्थान नहीं है, और इस विषय में मेरा अधिक अधिकार भी नहीं है। फिर भी सहज बुद्धि से संक्षेप में कुछ लिखना अनुचित न होगा। दरद और पिशाच आदि जातियों का स्थल कराकोरम और मध्य एशिया के ही अर्त-पर्त में माना जाता है। क्षेत्रीय जलवायु और आस-पड़ोस के सम्पर्क से प्रभावित होकर सभी भाषाएँ, अपनी जननी से कुछ पृथक् तो हो ही जाती हैं, किन्तु वे कुल में भिन्न नहीं मानी जाती। “दरद और पिशाच भाषाओं को प्राकृत से मूलतः भिन्न मानना वैसा ही है जैसे भोजपुरी को हिन्दी से पृथक् मानना। दरद-पिशाच भी देश-काल-पात्र के प्रभाव से संस्कृत से अथवा प्राकृत से वैसे ही बदलीं जैसे सिन्धी, राजस्थानी आदि।

फिर सामान्य तोड़-मरोड़ भी एक शब्द को इतना भ्रष्टोत्पादक बना देता है कि उसके जनक मूल शब्द की ओर ध्यान ही नहीं जाता। उदाहरण के लिए कश्मीरी भाषा में ‘कूद्गश्?’ का अर्थ है ‘कहाँ जाते हो?’ यह कूद्गश् सुनने में नितान्त अभाष्य प्रतीत होता है। किन्तु यदि इसके बराबर हम ‘कुत्र गच्छसि?’ रख दें, तो संस्कृत के क्षेत्रीय रूपान्तर का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। पाठक ‘लल् द्यद’ के पदों को ध्यान से पढ़ते समय हिन्दी अनुवाद को भी देखते जायें। हम देखेंगे कि नितान्त अपरिचित और विदेशी प्रतीत होनेवाले शब्द कितना संस्कृत से ओतप्रोत हैं।



## भूमिका—

डॉ० बनारसी दास चतुर्वेदी जी ने इस परिश्रम पर भूमिका लिखने की कृपा की है। उनका आशीर्वाद और शुभकामनाओं का मुझ पर और ट्रस्ट पर स्नेहमय भार है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। उत्तरोत्तर आशीर्वाद रूपी पूंजी मैं उनसे समेटना चाहता हूँ।

## आभार-प्रदर्शन—

ट्रस्ट के भाषाई सेतुकरण की योजना को, उदार सदाशयों, विद्वानों, एवं उत्तरप्रदेश शासन से प्राप्त सहायता से सहारा मिलता रहा है। अन्य भाषाई ग्रन्थों के साथ, कश्मीरी 'लल द्यद' भी अपनी सहज गति से प्रकाशित होता। सौभाग्य से केन्द्रीय उपशिक्षा मंत्री माननीय श्री डी० पी० यादव, भारत सरकार के राष्ट्रभाषा सलाहकार बहुभाषा-मर्मज्ञ श्री रमाप्रसन्न नायक और शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के शिक्षानिदेशक श्री सनत्कुमार चतुर्वेदी जी की अनुकम्पा हुई जिसके फल-स्वरूप पुस्तक परिपूर्णता की ओर विशेष गति से अग्रसर होकर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत हो सकी है। हम इन महानुभावों के अतिशय अनुग्रहीत हैं।

हम विश्वास के साथ निवेदन करते हैं कि भुवन वाणी ट्रस्ट की भाषाई सेतुकरण की विशाल और अद्वितीय योजना उत्तरोत्तर फलवती होकर राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को पुष्ट करती रहेगी।

लखनऊ

२५ मार्च, १९७७

नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

कश्मीर की बहुचर्चित व आदिकवयित्री परमहंस लल द्यद के वाखों (पदों) का सानुवाद लिप्यंतरण प्रस्तुत है। लल द्यद के उपलब्ध लगभग सभी वाखों को संकलित कर देवनागरी लिपि में सानुवाद लिप्यंतरित करने का यह प्रथम मौलिक व वैज्ञानिक प्रयास है।

यों लल द्यद के वाखों का संकलन व अनुवाद कई विद्वानों ने किया है जिनमें उल्लेखनीय हैं सर्वश्री ग्रियर्सन, राजानक भास्कराचार्य, सर्वानन्द चिरागी, जियालाल कौल जलाली, जे० एल० कौल व नन्दलाल कौल तालिब, गोपीनाथ रैना, शंभुनाथ भट्ट हलीम आदि। (इन संकलनकर्ताओं के कार्य का परिचय इसी ग्रन्थ में अन्यत्र 'संत कवयित्री लल द्यद : जीवन और कृतित्व' के अन्तर्गत दिया गया है।) १७९ लल-वाखों को एक ही संकलन के अन्तर्गत हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करने का यह मेरा प्रथम प्रयास है।

कश्मीरी रामायण 'रामावतारचरित' का सानुवाद लिप्यंतरण संपन्न करने के बाद भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ के अनुरोध पर मैंने लल-वाखों के संकलन व सानुवाद लिप्यंतरण का काम १९७३ ई० में प्रारम्भ किया। ट्रस्ट के अनुरोध को अनुरोध नहीं, अपितु अपना धर्म मानकर मैं जब काम में जुट गया तो मुझे लगा कि मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ। लल-वाखों का संकलन-संचयन करने के बाद (जिसमें मुझे लगभग एक वर्ष लगा) जब मैं उनका अनुवाद करने बैठा तो मेरी वाणी जाने क्यों लड़खड़ाने लगी, लेखनी जाने क्यों काँपने लगी! धर्म, दर्शन, ज्ञान और भक्ति की पेचीदगियों से संयुक्त इन वाखों का एक-एक शब्द, एक-एक चरण और एक-एक वाक्य मुझे अपने आप में एक-एक शास्त्र लगा। ऊपर से इन वाखों की भाषा आज की कश्मीरी से तनिक भिन्न होने के कारण मेरा रहा-सहा उत्साह भी भंग हो गया। मैंने निर्णय लिया कि इन वाखों का अनुवाद करना मेरे बस की बात नहीं।

इधर, काम के प्रति मैं उदासीन हो चला और उधर देव को कुछ और ही मंजूर था। सितम्बर ७५ में नाथद्वारा, राजस्थान से मैं ड्यपुटेशन पर उत्तर क्षेत्रीय भाषा केन्द्र, पटियाला में कश्मीरी के व्याख्याता पद पर प्रतिष्ठित हुआ। केन्द्र में उपलब्ध कश्मीरी पुस्तकालय की सुविधा, कुछेक कश्मीरी ज्ञाताओं के सान्निध्य आदि ने मेरे कर्मोत्साह को पुनः जाग्रत किया। इसी बीच ट्रस्ट के मुख्य-न्यासी श्रीमान अवस्थी साहब का स्मरण-पत्र प्राप्त हुआ कि मैं लल द्यद का काम अब जल्दी ही समाप्त कर डालूँ, क्योंकि ट्रस्ट की आगामी योजना में 'लल-वाखों' के प्रकाशन की घोषणा कर दी गई है। स्मरणपत्र मेरे लिए संजीवनी का काम कर गया और मुझे अपने कर्तव्य-पथ का स्मरण हो आया। उपरान्त, समस्त



चित्तवृत्तियों को बटोरकर मैं काम में लग गया। कुछ इष्टबल और कुछ गुरु-कृपा (ट्रस्ट के मुख्यन्यासी अवस्थी साहब भी उनमें शामिल हैं) कि काम धीरे-धीरे ठिकाने लगता गया। एक-एक वाख का अनुवाद पूरा करने में मैं इतना खो गया कि मुझे खबर ही न रही कि कब सबके सब वाखों का अनुवाद पूरा हो चुका। पटियाला में मेरे मकान-मालिक श्री महेन्द्रसिंह जी बजाज दो विषयों पंजाबी और उर्दू में एम० ए० हैं। मेरा काम देखकर वे काफ़ी प्रभावित हुए। एक सच्चे-हितैषी की तरह वे मेरा उत्साह बढ़ाते रहे, इसके लिए मैं सरदार साहब का हृदय से आभारी हूँ।

वाखों का अनुवाद करते समय मैंने इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है कि प्रत्येक वाख का सही और शुद्ध अनुवाद सामने आ जाए। इसके लिए मैंने कई संदर्भ-ग्रन्थों व विद्वानों से सहायता ली है। (उन सबका मैं आभारी हूँ) फिर भी हो सकता है कि कहीं पर कोई त्रुटि रह गई हो, उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

मूल वाखों को देवनागरी में लिप्यंतरित करने के लिए भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा निर्धारित 'कश्मीरी-देवनागरी वर्णमाला' को आधार बनाया गया है। इस वर्णमाला का परिचय पृष्ठ २३-२४ पर दिया गया है।

उत्तर क्षेत्रीय भाषा-केन्द्र, पटियाला के तेलुगुभाषी कश्मीरी प्रशिक्षणार्थी श्री दाऊद अली मंजू को भी धन्यवाद देना चाहूँगा। प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित ललवाख उन्हीं की रचि के अनुसार मैंने क्रमबद्ध किए हैं। प्रारम्भ में मैंने इन वाखों को अकारादि क्रम से जमाया था। किन्तु बाद में पाया कि बहुत सारे वाख कथ्य की दृष्टि से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। अतः उन्हें अकारादि क्रम से रखना संभव न था।

मैं उत्तर क्षेत्रीय भाषा-केन्द्र, पटियाला के प्राचार्य श्री डा० ओमकार एन० कौल का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक निर्देश और सूचनाएँ देकर मेरे परिश्रम को सार्थक बनाने में मेरी आशातीत सहायता की।

बन्धुवर श्री पृथ्वीनाथ साइल का भी आभारी हूँ जो नियमित पत्राचार द्वारा कश्मीर से मुझे आवश्यक सामग्री और सूचनाएँ भिजवाते रहे। भाई साइल ने इसी प्रकार 'रामावतार चरित' को तैयार करते वक्त भी मेरी काफ़ी सहायता की थी। मैं इन लगनशील व सेवाभावी महानुभाव की चिरायु, सुख-समृद्धि व उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूँ। प्रियवर भूषणलाल जाड़ू व मोहनकृष्ण रैणा भी धन्यवाद के पात्र हैं। दोनों ने लल-वाखों के संकलन में मेरी बहुत सहायता की। भाषा-जगत मेरे इस प्रयास का स्वागत करेगा, ऐसा विश्वास है।

डा० शिवनकृष्ण रैणा

## लल द्यद : जीवन और कृतित्व

( डा० शिवनकृष्ण रैणा : एम० ए०, पीएच० डी० )

लल द्यद को कश्मीरी जनता ललेश्वरी, ललयोगेश्वरी, लला, लल, ललारिका आदि नामों से जानती है।<sup>१</sup> इस कवयित्री का जन्मकाल विद्वानों के बीच विवाद का विषय बना हुआ है। डा० ग्रियर्सन तथा आर० सी० टेम्पल ने लल द्यद की जन्मतिथि देकर उसकी जन्मशती का उल्लेख किया है। उनके अनुसार कवयित्री का आविर्भाव १४वीं शताब्दी में हुआ था तथा वह प्रसिद्ध सूफ़ी संत सय्यद अली हमदानी के समकालीन थी।<sup>२</sup> डा० जी० एम० सूफ़ी तथा प्रेमनाथ बजाज लल द्यद का जन्म सन् १३३५ ई० में मानते हैं।<sup>३</sup> श्री जियालाल कौल के मतानुसार लल द्यद का जन्म १४वीं शती के मध्य में सुल्तान अलाउद्दीन (१३४७ ई०) के समय हुआ था।<sup>४</sup> श्री जियालाल कौल जलाली लल द्यद का जन्म १४वीं शती के दूसरे दशक में भाद्रपद की पूर्णिमा को मानते हैं। "वाक्याते-कश्मीर" में लल द्यद का जन्मकाल ७४८ हिजरी तदनुसार १३४८ दिया गया है। कश्मीर के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हसन-खूयामी ने तारीख-ए-कश्मीर में लल द्यद का जन्म वर्ष ७३५ हिजरी तदनुसार १३३५ ई० दिया है।<sup>५</sup> विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न जन्म-तिथियों का विश्लेषण करने पर लल द्यद का जन्मकाल १३३५ ई० अधिक उपयुक्त ठहरता है।<sup>६</sup>

१. लल द्यद का जन्म-नाम कुछ और रहा होगा। 'लल' कश्मीरी में तौद को कहने हैं तथा 'द्यद' किसी भी आदरणीय प्रोढ़ा के लिए प्रयुक्त होनेवाला आदर-सूचक शब्द है। कहते हैं कि लल द्यद प्रायः अर्धनग्नावस्था में घूमती रहती थी और उसकी तौद इतनी विकसित थी कि उसके गुप्तांग उस तौद से ढके रहते थे। पं० गोपीनाथ रैणा ने अपनी पुस्तक "ललवाक्य" में लल द्यद का जन्म-नाम पद्मावती बताया है।

२ 'लल वाक्यानि' १९२०, पृ० ३ तथा "द वर्ड्स आफ लला प्राफ़ेक्ट्स" १९२९, पृ०—१

३ 'कशीर' प्रथम भाग, पृ० ३८३ तथा "द डाटर्स आफ़ वितस्ता"

४ "स्टडीज इन कश्मीरी" पृष्ठ २९

५ "काशिरि अद्बुच तारीख" अवतार कृष्ण रहबर, पृ० १५०-१५१

६ कहा जाता है कि लल द्यद ने अपने जीवनकाल में तत्कालीन युवराज शहाबुद्दीन, प्रसिद्ध मुसलमान संत सैयद जलालुद्दीन बुखारी, सैयद हुसैन सयनानी, सैयद अली हमदानी आदि से भेंट की थी। ये घटनाएँ क्रमशः ७४८ हि०, ७७३ हि०, और ७८१ हि० की हैं। स्पष्ट है कि लल द्यद का इन हिजरी वर्षों के पूर्व न केवल जन्म हुआ था अपितु वह पूर्णतया सयानी भी हो चुकी थी।



लल छद की मरण-तिथि जन्म-तिथि के समान अनिश्चित है। केवल इतना कहा जाता है कि जब लल छद ने प्राण त्यागे तो उस समय उसकी देह कुन्दन के समान दमक उठी। यह घटना इस्लामाबाद के निकट विजबिहारा में हुई बतायी जाती है।<sup>१</sup> लल छद का मृत शरीर बाद में किधर गया, उसे कहाँ जलाया गया आदि, इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। किंबदन्ती है कि प्रसिद्ध सन्त-कवि शेख नूद्दीन बली ने जिसका जन्म १३७६ ईसवी में हुआ, लल छद के फटकारने पर अपनी माँ के स्तनों से दुग्ध-पान किया था। इससे लल छद का कम से कम १३७६ ई० तक जीवित रहना सिद्ध होता है।

लल छद का जन्म पांपोर के निकट सिमपुरा गाँव में एक ब्राह्मण किसान के घर हुआ था। यह गाँव श्रीनगर से लगभग ९ मील की दूरी पर स्थित है। तत्कालीन प्रथानुसार लल छद का विवाह उसकी बाल्या-वस्था में ही पांपोर ग्राम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण घराने में हुआ। उसके पति का नाम सोनपंडित बताया जाता है।<sup>२</sup> बाल्यकाल से ही इस आदि कवयित्री का मन सांसारिक बन्धनों के प्रति विद्रोह करता रहा जिसकी चरम-परिणति बाद में भाव-प्रवण दार्शनिक "बाख-साहित्य" के रूप में हुई।<sup>३</sup> लल छद को प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपने कुल-गुरु श्री सिद्धमोल से प्राप्त हुई। सिद्धमोल ने उसे धर्म, दर्शन, ज्ञान और योग सम्बन्धी विभिन्न ज्ञातव्य रहस्यों से अवगत कराया तथा गुरुपद का अपूर्व गौरव प्राप्त कर लिया। अपनी पत्नी में बढ़ती हुई विरक्ति को देखकर एक बार सोनपंडित ने सिद्धमोल से प्रार्थना की कि वे लल छद को ऐसी उचित शिक्षा दें जिससे वह सांसारिकता में रुचि लेने लगे। कहते हैं कि सिद्धमोल स्वयं लल छद के घर गये। उस समय सोनपंडित भी वहाँ पर मौजूद थे। इससे पूर्व कि गुरुजी लल छद को सांसारिकता का पाठ पढ़ाते, एक गम्भीर चर्चा छिड़ गई। चर्चा का विषय था— १. सभी प्रकाशों में कौन-सा प्रकाश श्रेष्ठ है, २. सभी तीर्थों में कौन-सा तीर्थ श्रेष्ठ है, ३. सभी परिजनों में कौन-सा परिजन श्रेष्ठ है, और ४. सभी सुखद वस्तुओं में कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है ?

१ "कश्मीरी जवान और शायरी," आजाद पृ० १२५, भाग २।

२ "ललद्वयद और उनकी दार्शनिक विचारधारा" डा० कृष्णा शर्मा, "मार्गदर्शक" (कश्मीर-विशेषांक) झाँसी पृ० २१९।

३ ललद्वयद की तबियत में वचन से ही कुछ ऐसी बातें थीं जिनसे जाहिर होता है कि इसके दिल व दिमाग पर प्रारम्भ से ही गौर मामूली प्रभाव था। वह प्रायः अकेली बैठती और गहरे सोच में डूबी रहती। दुनिया की कोई दिलचस्पी उसके लिए आकर्षण का केन्द्र न बन सकी। वह प्रायः इस असाधारण स्वभाव के कारण अपनी सहेलियों के बीच हाम-परिहास का विषय बन जाती। "कश्मीरी जवान और शायरी," पृष्ठ ११३ भाग २।

सर्वप्रथम सोनपंडित ने अपनी मान्यता यों व्यक्त की—सूर्य-प्रकाश से बढ़कर कोई प्रकाश नहीं है, गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, भाई के बराबर कोई परिजन नहीं है, तथा पत्नी के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।<sup>१</sup> गुरु सिद्धमोल का कहना था—नेत्र-प्रकाश के समान और कोई प्रकाश नहीं है, घुटनों के समान और कोई तीर्थ नहीं है, जेब के समान और कोई परिजन नहीं है, तथा शारीरिक स्पर्शा के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।<sup>२</sup> योगिनी लल छद ने अपने विचार यों रखे—मैं अर्थात् आत्मज्ञान के समान कोई प्रकाश नहीं है, जिज्ञासा के बराबर कोई तीर्थ नहीं है, भगवान् के समान और कोई परिजन नहीं है, तथा ईश्वर-भय के समान कोई सुखद वस्तु नहीं है।<sup>३</sup> लल छद का यह सटीक उत्तर सुनकर दोनों सोनपंडित तथा सिद्धमोल अवाक् रह गये।

विवाह के पश्चात् ससुराल में लल छद को अपनी सास की कटु आलोचनाओं एवं यन्त्रणाओं का शिकार होना पड़ा। किन्तु वह उदार-शीला यह सब पूर्ण धैर्य के साथ झेलती रही। एक दिन लल छद पानी भरने घाट पर गई हुई थी। माँ ने पुत्र को उकसाया—देख तो यह चुड़ैल घाट पर इतनी देर से क्या कर रही है। सोनपंडित लाठी लेकर घाट पर गये। सामने से लल छद सिर पर पानी का घड़ा लिए आ रही थी। सोनपंडित ने जोर से लाठी घड़े पर चलाई। घड़ा फूट कर खण्डित हो गया, किन्तु कहते हैं कि पानी ज्यों का त्यों उस देवी के सिर पर टिका रहा। घर पहुँचकर लल छद ने इस पानी से बर्तन भरे तथा जो पानी बचा रहा उस पानी को खिड़की से बाहर फेंक दिया। थोड़े दिनों के बाद उस स्थान पर एक तालाब बन गया जो अभी भी "लल तालाग" (तडाग) के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार एक दिन लल छद के ससुर ने सहभोज दिया। लल छद अपनी दैनिक चर्या के अनुसार घाट पर पानी भरने के लिए गई। वहाँ बातों ही बातों में सहेलियों ने उसे छेड़ा—आज तो तेरे घर में तरह-तरह के पकवान बने हैं, आज तो पेट भर तुझे स्वादिष्ट पदार्थ खाने को मिलेंगे। लल छद ने दीनतापूर्वक उत्तर दिया—

१ सिरियस ह्यु नु प्रकाश कुने, गंगि ह्यु न तिरुथ कांह।

बायिस ह्यु नु बांदव कुने, रनि ह्यु न सोख कांह॥

२ घुटनों से तात्पर्य स्वावलम्बन से है।

३ अँखन ह्यु नु प्रकाश कुने, कोठयन ह्यु नु तिरुथ कांह।

चन्द्रस ह्यु नु बांदव कुने, रनि ह्यु नु सोख कांह॥

४ मेयस ह्यु नु प्रकाश कुने, पेयस ह्यु नु तिरुथ कांह।

दयस ह्यु नु बांदव कुने, मेयस ह्यु नु सोख कांह॥



V.V. J. n.

[ १४ ]

“घर में चाहे बकरा कटे या भेड़, मेरे भाग्य में तो पत्थर के टुकड़े ही लिखे हैं।” कहते हैं कि लल छद की निर्दयी सास उसे कभी भरपेट भोजन नहीं देती थी। दिखावे के लिए थाली में एक पत्थर रखकर उसके ऊपर भात का लेप करती, नौकरों की तरह काम लेती आदि। इस समय तक ललछद की अन्तर्दृष्टि दैहिक चेष्टाओं की संकीर्ण परिसीमाओं को लाँघकर असीम में फैल चुकी थी। वह वन-वन अन्तर्ज्ञान का रहस्य अन्वेषित करने के लिये डोलने लगी। यहाँ तक कि उसने वस्त्रों की भी उपेक्षा कर दी। उसकी आचार-मर्यादा कृत्रिम व्यवहारों से बहुत ऊपर उठकर समष्टि में गोते लगाने लगी। नाचती, गाती तथा आनन्दमग्न होकर विवस्त्र घूमती रहती। पुरुष उन्हीं को मानती जो भगवान से डरते हों, और ऐसे पुरुष उसके अनुसार इस संसार में बहुत कम थे। शेष के सामने नगनावस्था में फिर घूमने-फिरने में शर्म कैसी? एक दिन लल छद को प्रसिद्ध सूफी संत मीर सैयद हमदानी सामने से आते दिखाई पड़े। उसने एकदम अपनी देह को आवृत्त करने का प्रयास किया। निकट पहुँचकर संत हमदानी ने पूछा—हे देवि, तुमने अपनी देह की यह क्या हालत बना रखी है? तुम्हें नहीं मालूम कि तुम नंगी हो। लल छद ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—हे खुदा-दोस्त, अब तक मेरे पास से केवल औरतें गुजरती रहीं, उनमें से कोई पुरुष अथवा आँखवाला नहीं था। आप मुझे मर्द तथा तत्त्वज्ञानी दीख पड़े, इसलिए आपसे अपनी देह छिपा रही हूँ। एक और घटना इस प्रकार है। कहते हैं कि जब संत हमदानी को दूर से आते देखा तो वह चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी कि आज मुझे असली पुरुष के दर्शन हो रहे हैं। वह एक बनिये के पास गई और तन ढकने के लिए वस्त्र मांगे। बनिये ने कहा कि आज तक तुम्हें कपड़े की आवश्यकता नहीं पड़ी तो इस समय क्यों माँग रही हो। लल छद ने उत्तर दिया—वे जो महापुरुष सामने से आ रहे हैं, मुझे पहचानते हैं और मैं उन्हें। इतने में सन्त हमदानी समीप पहुँच गये। पास ही एक नानवाई का तन्दूर जल रहा था। लल छद तुरंत उसमें कूद पड़ी। मुस्लिम सन्त पूछ-ताछ करते वहाँ पहुँच गये और उन्होंने आवाज दी—ऐ लल, बाहर आओ, देखो तो कौन खड़ा है। उसी क्षण लल छद सुन्दर दिव्य वस्त्र धारण किये प्रत्यक्ष हो गई।<sup>१</sup>

लल छद के कोई सन्तान न हुई थी। प्रकृति ने इस बन्धन से

१ इस घटना का आधार लेकर कश्मीर में एक कहावत प्रचलित हो गई है—“ललि नीलवठ चुलि नु जाँह” अर्थात् लल के भाग्य से पत्थर कहाँ टलेंगे।

२ इस घटना पर भी एक कहावत प्रचलित है—“आये वनिस तु गयि काँदरस” अर्थात् आयी तो थी बनिये के पास किन्तु गई नानवाई के पास।

V.V. J. n.

[ १५ ]

मुक्त रखा था कवयित्री ने स्वयं एक स्थान पर कहा है—“न सूता बनी और मैंने प्रसूता का आहार ही किया।”<sup>१</sup>

विपरीत पारिवारिक परिस्थितियों ने लल छद को एक नई जीवन-दृष्टि प्रदान की। उसने अपनी समस्त अभीष्ट पूर्तियों को व्यापक रूप दे दिया तथा अपनी आत्मा के चिर अन्वेषित सत्य को ज्ञान एवं भक्ति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में साकार कर दिया। ये स्फुट किन्तु सरस अभिव्यक्तियाँ “वाख” कहलाती हैं। कबीर की भाँति ललछद ने भी “मसि-कागज” का प्रयोग कभी नहीं किया। उसके वाख गेय हैं जो प्रारम्भ में मौखिक परम्परा में ही प्रचलित रहे तथा उन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया। इस दिशा में सर्वप्रथम ग्रियर्सन महोदय का नाम उल्लेखनीय है।<sup>२</sup> उन्होंने महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री की सहायता से १०६ वाख एकत्रित किये तथा उन्हें “ललवाक्यानि” के अन्तर्गत सम्पादित किया। यह पुस्तक सन् १९२० में रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन से प्रकाशित हुई है। श्री आर० सी० टेम्पल की पुस्तक “द वर्ड आफ लला” में लल छद के वाक्यों का गम्भीर अध्ययन मिलता है। यह पुस्तक सन् १९२४ में विश्वविद्यालय प्रेस, कैम्ब्रिज में प्रकाशित हुई है। राजानक भास्कराचार्य का लल छद के ६० वाखों का संस्कृत रूपान्तरण भी मिलता है। लल छद के वाखों (वाक्यों) का संकलन व अनुवाद करने में जिन दूसरे विद्वानों ने उल्लेखनीय कार्य किया है, उनके नाम हैं—सर्वश्री सर्वानन्द चरागी, आनन्द कौल वामजई, रामजू कल्ला, जियालाल कौल जलाली, गोपीनाथ रैना, जियालाल कौल, आर० के० वांचू तथा नन्दलाल तालिब। श्री सर्वानन्द चरागी ने “कलाम-ए-ललारिफा” के अन्तर्गत लल छद के १०० वाखों का हिन्दी में अनुवाद किया है। श्री आनन्द कौल वामजई ने ७५ तथा रामजू कल्ला ने “अमृतवाणी” में १४६ ललवाखों को प्रकाशित किया है।

१ “न प्यायस, न जायस, न खेयम हंद तुने शोंठ”

२ सन् १९१४ में ग्रियर्सन ने लल वाक् एकत्रित कर उन्हें पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। इस कार्य के लिए उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध कश्मीरी विद्वान पं० मुकुन्दराम शास्त्री का सहयोग लिया। मुकुन्दराम ने काफ़ी खोज की किन्तु ललवाक् सम्बन्धी कोई भी सामग्री उनको हाथ न लगी। एक बार वे बारामूला से ३० मील दूर “गुश” नाम के गाँव में पहुँचे। वहाँ पर उनकी भेंट धर्मदास नामक एक हिन्दू सन्त से हुई। इस सन्त को लल छद के अनेक वाख (वाक्) कण्ठस्थ थे। मुकुन्दराम ने इन वाकों का संग्रह कर उन्हें संस्कृत व हिन्दी रूपान्तर के साथ ग्रियर्सन महोदय को सौंप दिया। इन्हीं “वाकों” को बाद में ग्रियर्सन ने सन् १९२० में लन्दन से प्रकाशित करवाया।



पं० जियालाल कौल जलाली ने अपनी पुस्तिका "ललवाख" में ३८ वाखों का हिन्दी में अनुवाद किया है। जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित "ललद्यद" (१९६१) में लगभग १३५ वाख आकलित हैं। इस पुस्तक के सम्पादक श्री जियालाल कौल तथा श्री नन्दलाल तालिब हैं।

ललद्यद के "वाख" प्रायः छन्द-मुक्त हैं। चार-चार 'पादों' के ये स्फुट 'वाख' लययुक्त हैं। इनमें कवयित्री ने जीवन दर्शन की गूढ़तम गुत्थियों को सहज-सरल रूप में गूँथ दिया है। ललद्यद के कृतित्व का परिचय पहली बार "तारीख-ए-कश्मीर" (१७३० ई०) में मिलता है। इसके पूर्व वह उपेक्षिता ही रही है। श्रीवर की "जैनराज तरंगिणी" तथा जोनराज की "जैनतरंगिणी" में भी उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वस्तुतः १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में ललद्यद के कृतित्व की ओर जनता का ध्यान गया और उसका विधिवत् महत्वांकन होने लगा।

ललद्यद के वाख-साहित्य का मूलाधार दर्शन है। उसका प्रत्येक वाख दार्शनिक चेतना का आगार है जिस पर प्रमुखतः शैव, वेदान्त, तथा सूफ़ी दर्शन की छाप स्पष्ट है। जिस समय ललद्यद का आविर्भाव हुआ उस समय कश्मीर में इस्लाम धर्म का एक विचार-पद्धति के रूप में आगमन हो चुका था। देश में घोर अशान्ति व धार्मिक अव्यवस्था व्याप्त थी। धर्मान्ध कट्टरपन्थी अपने-अपने धर्म-सम्प्रदायों का प्रचार प्रसार करने में दत्तचित्त थे। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषमतायें भी जनता को आड़े हाथों ले रही थीं। ऐसे विकट क्षणों में ललद्यद ने जनता के समक्ष धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए जनवाणी में परम सत्य की सार्थकता को ऐसी व्यापक तथा सर्वसुलभ संघटिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसमें न कोई दुराव था, न कोई आवरण, और न कोई विक्षेप। ललद्यद की यह सत्य-प्रतिष्ठा विशुद्धतः उसकी अन्तरानुभूति की देन है।

ललद्यद विश्वचेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती है। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमचेतना का आभास होना सम्भव है। यह रहस्य उसे अपने गुरु से ज्ञात हुआ था:—

गोरन दौपनम कुनुय वज्रुन,  
न्यबरु दौपनम अंदर अज्रुन,  
सुय मै ललि गोम वाख त वज्रुन,  
तवय ह्योतुम नंगय नज्रुन ॥

गुरु ने मुझे एक रहस्य की बात बताई—बाहर से मुख मोड़ और अपने अन्तर को खोज। बस, तभी से यह बात हृदय को छू गई और मैं विवस्त्र नाचने लगी।

ललद्यद उस सिद्धावस्था को पहुँच चुकी थी जहाँ स्व और पर को भावनायें लुप्त हो जाती हैं—जहाँ मान-अपमान, निन्दा-स्तुति आदि भावनायें मन की संकुचितता को लक्षित करती हैं। जहाँ पंचभौतिक काया मिथ्याभासों एवं क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर विशुद्ध स्फुरणाओं का केन्द्रीभूत पुंज बन जाती है—

युस हो मालि हैड्यम, गेल्यम मसखरु करुयम,  
सुय हो मालि मनस खट्यम नु जांह।  
शिव पनुन येलि अनुग्रह कर्यम,  
लुकुहुन्द हैडुन मे कर्यम क्याह ॥

चाहे कोई मेरी अवहेलना करे या तिरस्कार, मैं कभी मन में उसका बुरा न मानूँगी। जब मेरे शिव का मुझ पर अनुग्रह है तो लोगों के भला-बुरा कहने से क्या होता है ?

इस असार-संसार में व्याप्त विभिन्न विरोधाभासों को देखकर ललद्यद का अन्तर्मन विह्वल हो उठा और उसे स्वानुभूति का अनूठा प्रसाद मिल गया—

गाटुला अख वुछुम बोछि सुत्य मरान,  
पन जन हरान पौहन्य वाव लाह।  
निश बोद अख वुछुम वाजस मारान,  
तनु लल बु प्रारान छैन्यम नु प्राह ॥

शंकर के अद्वैत का ललद्यद ने पूर्ण सहृदयता के साथ निरूपण किया है। सकल सृष्टि में जो गोचर है वह परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। "मैं ही ब्रह्म हूँ", वह मेरे पास है—मुझसे अलग नहीं है। उसे ढूँढ़ने के लिए तनिक एकाग्रता, लगन तथा त्याग की आवश्यकता है। कुत्सित स्वार्थ, सीमित मनोवृत्ति आदि का विसर्जन भी अनिवार्य है—

लल बु द्रायस लोलरे,  
छांडन रुजस दोह कयोह राथ।  
वुछुम पंडिता पननि गरे,  
सुय में रोटमस न्यछतुर तु साथ ॥

१ एक प्रबुद्ध को भूख से मरते देखा, पतझर सा जीर्ण-शीर्ण हुआ पड़ा।

एक निर्बुद्ध से रसोइये को पिटते देखा, तभी से यह मन बाहर निकल पड़ा ॥



मैं उस परम शक्ति को घर से ढूँढ़ते-ढूँढ़ते निकल पड़ी। उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते रात-दिन बीत गये। अन्त में देखा, वह मेरे ही घर में विद्यमान है। बस, तभी से मेरी परमात्म-साधना का उचित मुहूर्त निकल आया।

रंगस मंज ब्यौन - ब्यौन लगुन,  
सारिय ज़ाब्रख लख तु सौख।  
ज़ख रिश त वार येलि मनुमंज गालख,  
अद डेशख शिव सुंद मौख।

इस संसाररूपी रंगशाला में तुझे भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियाँ देखने को मिलेंगी। वस्तुतः ये सभी एक हैं—उनके वास्तविक रूप को ढूँढ़। जब तू इसके लिए सुख-दुःख उठायेगा तथा घृणा, वैर आदि को मन से गला देगा तब तुझे शिवमुख के दर्शन होंगे।

कुस मरि तु कस मारन,  
मारि कुस तु मारन कस,  
युस हरु - हरु वाविथ गरु-गरु करि,  
अद सुय मरि तु मारन तस ॥

कौन मारेगा और किसको मारा जायगा, कौन मारेगा और किसको मारेंगे। जो शिव-शिव कहना छोड़कर घर-घर कहने लगेगा बस वही मरेगा और उसी को मारेंगे।

गगन ज़ुय बूतल ज़ुय,  
ज़ुय दन पवन तु राथ,  
अरुग चंदन पोश पोन्थ ज़ुय,  
ज़ुय छुख सकलय तु लांगिजि क्याह ॥

तू ही गगन है, तू ही भूतल, दिन, पवन व रात है। अर्घ्य, चन्दन, पुष्प, पानी आदि भी तू ही है। तू ही सब कुछ है, फिर हे भगवान तुझे क्या चढ़ाऊँ ?

मंकरिस ज़न मल चोलुम मनस,  
अद मे लंबुम ज़निस ज़ान।  
सुय येलि डचूठुम निशि पानस,  
सोरुय सुय तु बु नो कांह ॥

धुल गई जब मैल मन-दर्पण से तो उसे अपने में ही स्थित पाया। तब सर्वत्र ही दिखने लगा वह, और व्यक्तित्व मेरा शून्य हो आया ॥

लल दद ने धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों तथा विक्षेपों का खुलकर खण्डन किया है। कबीर की भाँति उसने दोनों हिन्दुओं तथा मुसलमानों को खरी-खोटी सुनाई है। धर्म का वास्तविक अर्थ है मन की शुद्धता। वस्तुतः यही शुद्धता जीव को परमतत्त्व तक पहुँचा सकती है।

बुथ क्याह जान छुय वौदु छुय कंन्य,  
असलुच कथ जांह सनिय नो।  
परान तु लेखान वुठ तु ओंगजि गजी,  
अंदरिम दुय जांह ज़ंजिय नो ॥

मुखाकृति अत्यन्त सुन्दर है किन्तु हृदय पत्थर-तुल्य है—उसमें तत्व की बात कभी समायी नहीं। पढ़-पढ़ व लिख-लिखकर तुम्हारे होठ व तेरी उंगलियाँ घिस गईं मगर तेरे अन्तर का दुराव कभी दूर न हुआ।

अविचारी हा मालि छिय पोथ्यन परान,  
यिथु तोतु परान राम पंजरस।  
गीता परान हत्या लवान,  
परुम गीता तु परान छस ॥

अविचारी पोथियाँ ऐसे पढ़ते हैं जैसे तोता पिंजरे में राम-राम रटता है। ऐसे व्यक्ति गीता पढ़ते हैं तो केवल दिखावे के लिए। मैंने सचमुच गीता पढ़ी है तथा उसे पढ़ रही हूँ।

अटनुच सन दिथ थावान मटन,  
लूब बौछ बोलान ग्यानुच कथ।  
फंट्य फंट्य नेरान तिम कति वटन,  
वुक अय मालि छुख तु पोर गछ पथ ॥

एक स्थान से माल छीनकर दूसरे स्थान पर रखते हैं, और ऊपर से ये लोभी ज्ञान की बातें करते हैं। ऐसे पाखण्डी भला क्या प्राप्त कर सकते हैं ? हे मनुष्य ! यदि तू बुद्धिमान है तो इस पाखण्ड को त्याग दे ॥



शिव छुय थलि थलि रोज्ञान,  
मो ज्ञान ह्यौंद तु मुसलमान ।  
त्रुक अय छुख तु पान परज्ञान,  
सौय छय साहिवस सुत्य ज्ञान ॥

शिव सर्वत्र व्याप्त है। अतः हे मनुष्य ! तू हिन्दू तथा मुसलमान में भेद न जान, यदि तू बुद्धिमान है तो अपने आपको पहचान, यही रहस्य की बात है।

लंज कासि शीत निवारि,  
 तन जलि करि आहार ।  
 यि कंम्य व्रौपदीश कोरुय हा बटा,  
 अचेतन बटस चेतन कठ दिन आहार ॥

यह तेरी लज्जा को ढाँकता है, शीत से भी रक्षा करता है। स्वयं एक मन भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यदि ये सभी तृण-जल का आहार करता है। यह उपदेश तुझको किसने दिया जो मिलकर एक ही दिशा की ओर प्रवृत्त हों तो निश्चय ही परमसत्य की तू अचेतन पत्थर पर चेतन बकरे को बलि चढ़ाता है। प्राप्ति होगी। / इस असार संसार में कोई भी वस्तु चिरस्थायी नहीं

लल चंद ने भाग्य की अनिवार्यता को यत्न-तत्न स्वीकार किया है। है। चिर-स्थायी तो केवल शिव हैं—  
भाग्य का लेख अमिट है, उसे कोई मिटा नहीं सकता—

हा मनुशि क्याजि छुस बुठान सेकि लूर,  
अमी रंखि हा मालि पकि नु नाव ।  
ल्यूखुय यि नारांन्य करमुनि रंखी,  
ती मालि हैकि नु फिरिथ जांह ॥

हे मनुष्य ! तू क्यों रेत की रस्सी बनाता है, इससे तेरी जीवन-नैया पार नहीं लग सकती। नारायण ने जो तेरी भाग्य रेखा खींची है, वह कभी बदल नहीं सकती।

लल द्यद के साधना-पक्ष में योग को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह योग कोरे बौद्धिक चिन्तन का प्रतिफलन नहीं है, उसमें प्रेम का माधुर्य विद्यमान है। योग की अनेक अन्तर्दशाएँ तथा कोटियाँ हैं। योगी को इनसे विधिवत् गुजरना पड़ता है और तब उस अमर-तत्व की प्राप्ति होती है—

शै वन चटिथ शशिकल वुजुम  
प्रकृत वुजुम पवन सुत्य ।  
लोलकि नारु सुत्य वालिज वुजुम,  
शंकर लोबुम तमी सुत्य ॥

शरीर में स्थित षट्चक्रों मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा को वश में करके मैंने ब्रह्मरन्ध्र को जगाया तथा प्राणायाम द्वारा अपने अन्तर को वश में करके प्रेम की अग्नि से उसे कुन्दन बना दिया, तब कहीं शिव के दर्शन हुए।

क्याह करु पांजन दहन तु काहन  
बुधुन यथ लेजि कंरिथ यिम गय ।  
सारिय समहन यथ रजि लमहन,  
अदु क्याजि राविहे कहन गाव ॥

पंचभूत काया में वर्तमान पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक मन भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यदि ये सभी मिलकर एक ही दिशा की ओर प्रवृत्त हों तो निश्चय ही परमसत्य की प्राप्ति होगी। (इस असार संसार में कोई भी वस्तु चिरस्थायी नहीं

दमी ड्याठुम नद गज्जवनी  
दमी ड्य्ठुम सुम नत तार ।  
दमी ड्याठुम थर फौलवुनी  
दमी ड्य्ठुम गुल नत्तु खार ॥

अभी-अभी नदी को गर्जते देखा, अभी-अभी उसपर पुल बनते देखा ।  
अभी-अभी फलों से लदी डाली देखी और अभी-अभी उसपर न फूल देखे न कांटे ।

ललद्यद का कृतित्व सांस्कृतिक पुनर्जागरण, मानव-कल्याण तथा सामाजिक पुनरुत्थान की दार्शनिक अभिव्यक्ति है जिसमें सरसता, स्पष्टता एवं सजीवता एक साथ गुम्फित है। उसके वाकों में धर्मदर्शन सम्बन्धी तथ्यों की प्रधानता के साथ-साथ काव्यात्मक सौन्दर्य की गहनता भी विपुल मात्रा में दृष्टिगत होती है। अपनी भावनाओं को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए कवयित्री ने प्रमुखतया उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत



संयोजित कार्य-व्यापार साधारण जन-जीवन से लिये गये हैं, जिनमें सहजता के साथ-साथ पर्याप्त अभिव्यञ्जना शक्ति समाहित है। रस परिपाक की दृष्टि से सम्पूर्ण वाक्-साहित्य में प्रायः शान्त रस की प्रबलता है।

भाषागत दृष्टि से ललद्यद के वाक् विशेष महत्व के हैं। लल द्यद के पूर्व कोई भी संरचना ऐसी नहीं मिलती जो कश्मीरी में लिखी गई हो। यद्यपि कुछ विद्वान् शितिकण्ठ की "महानय प्रकाश" को कश्मीरी की प्रथम कृति मानते हैं किन्तु उसकी भाषा कश्मीरी के उतनी निकट नहीं है जितनी लल द्यद के वाकों की है। भाषा-वैज्ञानिक-दृष्टि से इन वाकों का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। लल द्यद की भाषा मूलतः संस्कृत-निष्ठ है, जिस पर यत्न-तत्न फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रभाव भी मिलता है। (संस्कृत के अनेक शब्द कवयित्री ने अपने मूल रूप में प्रयुक्त किये हैं, जैसे— प्रकाश, तीर्थ, अनुग्रह, कर्म, बान्धव, मूढ़, मनुष्य, नारायण, मन, शीत, तृण, उपदेश, अचेतन, आहार, शिव, हर, गगन, भूतल, पवन, फल, दीप, हाम्भु, अर्घ्य, ज्ञान, राम, गीता, मूर्ख, पंडित, मान, संन्यास आदि। किन्हीं संस्कृत शब्दों का कश्मीरी-संस्करण करके प्रयोग किया गया है, जैसे—

समसार = संसार, दर्शन = दर्शन, बौद = बुद्धि, गोपत = गुप्त, सौख = सुख, मौख = मुख, शिन्य = शून्य, लंज = लज्जा, रुख = रेखा, त्रेणना = तृष्णा आदि। अरबी फ़ारसी से लिये गये कुछ शब्द इस प्रकार हैं—साहिब, दिल, जिगर, मुश्क, गुल, खार, बाग, कलमा, शिकार आदि।

## भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रयुक्त कश्मीरी वर्णमाला का देवनागरी रूपान्तर

### कश्मीरी-देवनागरी वर्णमाला

ई०। इ। आ। अ। औ। औ।  
की कि का क का क

ओ०। ओ०। ऊ०। उ। ऊ०। ऊ०।  
की की कू कु कू कु

इ०। ए०। ओ०। ओ०।  
कि के के के

छ०। च०। ग०। ख०। क०।

ट०। ज०। छ०। च०। ज०।

द०। थ०। त०। ड०। ठ०।

म०। ब०। फ०। प०। न०।

व०। ल०। र०। य०। य०।

ह०। स०। श०।

कश्मीरी की विशिष्ट ध्वनियों, उनके उच्चारणों, उनके लिए निर्धारित मात्रा-चिह्नों, उनके संस्थानों आदि का सोदाहरण विवरण अगले पृष्ठ पर इस प्रकार है:—



विशिष्ट स्वर तथा मात्राएँ—

- अ (१) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, अर्धसंवृत । जैसे, 'e' certainly में ।  
लर = मकान, गर = घड़ी, नर = बाँह
- आ (१) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, दीर्घ, अर्धसंवृत । जैसे, 'i' bird में या  
'u' curd में । हार = मैना, लार = खीरा, मार = माँ ।
- इ (२) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, संवृत । जैसे, 'ai' certain में या  
'e' broken में । गुथ = लहर, तर = चिथड़ा, वृ = मैं
- ऊ (२) प्रसारित, ओष्ठ, पश्च, संवृत, दीर्घ । (तनिक दीर्घ-प्रयत्न के साथ)  
तुर = सर्दी, सूर्य = साथ, कूद्य = कैदी
- ओ (१) गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत, ह्रस्व । जैसे, 'o' oclock  
में । नोट = घड़ा, सौन = गहरा, नौन = नंगा ।
- औ (१) गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत, ह्रस्व । अत्यल्प 'व' मिश्रित,  
जैसे, 'ua' equal में । (उच्चारण के समय ओष्ठों पर बाहर  
की ओर तनाव रहता है) सौन = सोना, बौन = नीचे,  
मौण्ड = विधवा ।
- ऐ (२) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत, ह्रस्व जैसे 'e' best में ।  
शे = छह, मे = मुझे, बेह = बैठो ।

विशिष्ट व्यञ्जन—

- च अघोष, अल्पप्राण, दंतमूलक, स्पर्श-संघर्षी चुर = खटमल,  
चूठ = सेब, चास = खाँसी
- छ अघोष, महाप्राण, दंतमूलीय, स्पर्श-संघर्षी छल = छल, लछ = धूल,  
लाछ = नपुंसक
- ज अघोष, महाप्राण, दंतमूलीय, स्पर्श-संघर्षी  
जंग = टाँग, जान = परिचय, रज = रस्सी

(क) अत्यल्प इ (१) के लिए शब्द के अंतिम वर्ण को अर्द्ध बनाकर उसके साथ  
'य' जोड़कर काम चलाया गया है । जैसे—पार्य, खार्य, वार्य, आदि ।

(ख) कश्मीरी में प्रायः सघोष वर्णों तथा—घ, झ, ढ, : घ, भ आदि का प्रयोग  
बिल्कुल नहीं होता । अतः इनका प्रयोग लिप्यन्तरण में नहीं हुआ है । घन को दन,  
धार को दार, भगवान को बगवान आदि लिखा गया है ।

आशा है कि हिन्दी के पाठकों को उपर्युक्त विभिन्न मात्रा-चिह्नों की मदद से  
कश्मीरी का सही पाठ करने में सफलता मिल जायेगी ।

—डॉ० शिवनकृष्ण रैणा

## ललद्दयद

कश्मीर की आदि कवयित्री की काव्य-सलिला

नागरी लिपि में, (हिन्दी गद्य एवं संस्कृत पद्यानुवाद सहित)

लल बु द्रायस लोलरे,

छांडान लूसुम द्यन क्योह राथ ।

बुछुम पंडिथा पनुनि गरे,

सुय मे रोटमस नेछतुर तु साथ ॥ १ ॥

लल्लाहं निर्गता दूरम्

अन्वेष्टुं शंकरं विभुम् ।

भ्रान्त्वा लब्धो मया स्वस्मिन्

वेहे देवो गृहे स्थितः ॥ १ ॥\*

मैं लल प्रेम से उस परमशक्ति को ढूँढने के लिए घर से निकल पड़ी ।  
उसे ढूँढते-ढूँढते रात-दिन बीत गये । अंत में देखा वह पंडित (इष्ट) तो  
मेरे ही घर में विद्यमान हैं । बस, तभी से मेरी अन्तर्साधना का उचित  
मुहूर्त निकल आया ॥ १ ॥

संस्कृत भावानुवाद में चिह्नित पद्य श्री राजानक भास्कराचार्य एवं शेष  
श्लोक श्री रामजी शास्त्री साहित्य-व्याकरणचार्य (लखनऊ) द्वारा विरचित हैं ।



गौरन वौनुनम कुनुय वञ्चुन,  
 नैबरु दौपनम अन्दरुय अञ्चुन ।  
 सुय मै ललि गव वाख तु वञ्चुन;  
 तवय मै ह्यौतुम नंगय नञ्चुन ॥ २ ॥

बहिरङ्गाद् अन्तरङ्गं स्वं  
 प्रविशेति गुरुर्जगौ ।  
 कायान्तरम् अनेनाभूद्  
 विवस्त्रा नर्तने रता ॥ २ ॥ ४६

गुरु ने मुझे एक ही वचन की दीक्षा दी—बाहर से भीतर (अन्दर)  
 चली जा । इसी एक वचन ने मेरी काया पलट दी और मैं नंगी  
 (विवस्त्र) नाचने लगी ॥ २ ॥

लल बु लूसुस छाँडान तु गारान,  
 हल मै कौरमस रसुनि शैतिय ।  
 वुछुन ह्यौतमस तौर्य डीठ्यमस बरन,  
 मै ति कल गनेयि जोगमस तंत्य ॥ ३ ॥

द्रष्टुं विभुं तीर्थवरान्गताहं  
 श्रान्ता स्थिता तद्गुणकीर्तनेषु ।  
 ततोऽपि खिन्नास्मि च मानसेन  
 स्वान्तर्निविष्टा खलु तद्विमर्शे ॥ ३ ॥\* २२२

मैं लल उस (परमशक्ति) को ढूँढते-ढूँढते और खोजते-खोजते  
 मुरझा (थक-हार) गयी । फिर भी मैंने अपनी सामर्थ्यानुसार उसे खोजने  
 हेतु शत-शत जोर और लगाये । जब निकट पहुँचकर उसे देखने लगी तो  
 पाया कि उसके किवाड़ों में कुंडी लगी हुई है । (मैंने फिर भी हिम्मत  
 नहीं हारी) मेरी जिज्ञासा बढ़ती ही गयी और मैं वहीं पर उसकी ताक  
 में बैठ गयी ॥ ३ ॥

लल बु ज्ञायस सौमन बागु बरस;  
 वुछुम शिवस शखुथ मीलिथ तु वाह ।  
 तंत्य लय करुम अमर्यत सरस,  
 जिदय मरस तु मै करि क्याह ॥ ४ ॥

लल्लाहं गता यावन्मानसाराम द्वारकम् ।  
 विलोकितस्तवा शक्त्या शिवो विलसितो मया ।  
 स्वात्मा निमज्जितस्तोषात् तस्मिन् पीयूषपुष्करे ।  
 जीवन्तीव मृता तावत् किं कुर्या विवशा सती ॥ ४ ॥

मैं लल जब स्वमन रूपी बाग के द्वार पर पहुँची तो देखा कि  
 (भीतर) शिव शक्ति से मिले हुए हैं । आनन्द-मग्न होकर मैंने अपने  
 आपको (परमात्मा रूपी) अमृत-सर में लय कर दिया । अब अगर मैं  
 जीते जी मर भी जाऊँ तो मुझे कोई चिंता नहीं ॥ ४ ॥

गौरु कथ हृदयसमंज बाग रूटुम,  
 गंगु जल नाविम तन तु मन ।  
 सौदीह जीवन मोरवतय प्रोवुम,  
 यमु बयि जोलुम पोलुम अरत ॥ ५ ॥

गुरोर्गिरं गोर्णवती निजान्तरे  
 गङ्गाम्भसा धौतवती निजां तनुम् ।  
 एकं शिवं प्राप्तवती यदा तदा  
 मुक्ता मुवा मृत्युभयात् स्वजीवने ॥ ५ ॥

गुरु की बात (शिक्षा) को मैंने बीच हृदय में धारण कर लिया ।  
 गंगाजल से इस तन और मन को धो डाला । तब जीते-जी इस जीवन से  
 मुक्ति प्राप्त कर ली और यम का भय सहते (परवाह न करते) हुए एक  
 (शिव) को अपना बनाया ॥ ५ ॥



कलन कालु जाल्य योदवय जे गोल;  
वेन्दिव गिह वा वेन्दिव वनवास ।

जानिथ सरवुगथ प्रोबो अमोल;  
युथुय जाम्यख त्युथुय आस ॥ ६ ॥

कालजालेन साकं चेत् कलना-विलयो भवेत्,  
तदा गृही वा वनवासी भवत्वं नात्र बन्धनम् ।

जानीहि सर्वगं नाथममलं सर्वतो मुखम्,  
तदा ज्ञानानुरूपं ते रूपं भावीति निश्चयः ॥ ६ ॥

काल के जाल (काल-चक्र) के साथ-साथ (रे मनुष्य ! ) यदि तेरी कलाएँ (इच्छाएँ) भी मिट जाएँ तो चाहे फिर तू वनवासी बने या गृहस्थ, कोई अन्तर नहीं पड़ता । बस, इतना जान ले कि प्रभु सर्वगत और निर्मल है । जैसा उसको समझेगा वैसा ही तुझे प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

आयस वते गंयस न वते,  
सुमन सौथि मंज लूसुम दोह ।

चन्दस वुछुम तु हार न अथे;  
नावि तारस दिमु क्या बो ॥ ७ ॥

समागता सरलपथेन विश्वे  
निवर्तने राजपथो न विद्यते ।

अस्तंगते दिनकरे स्वकरे न देयं  
यायां कथं निधनपारमपारतोयम् ॥ ७ ॥

(इस संसार में) मैं सीधी राह से तो आ गयी किन्तु (मोह-माया से पड़कर) यहाँ से सीधी राह से लौट न पाई । अभी बीच से तु से गुजर ही रही थी कि दिन ढल गया । (साधना रूपी कमाई की) जेब में हाथ डाला तो देखा वहाँ एक कौड़ी भी नहीं । अब भला पार उतरने के लिए (नाविक को) दूँ तो क्या दूँ ? ॥ ७ ॥

असि पौदि जौसि जामि,  
न्यथुय सनान करि तीरथन ।

बुहुर्य वंहरस नोनुय आसे;  
निशि छुय तु परजनावतन ॥ ८ ॥

स्नातं हसन्तं विविधं विधेयं  
कुर्वन्तमेतत्पुर एव सन्तम् ।

पश्यात्मदेवं निजवेह एव  
कृतं प्रदेशान्तरमार्गणेन ॥ ८ ॥\*

(रे मनुष्य ! यह शिव ही है जो) तेरे भीतर (कभी) हँसता है, कभी छींकता है, कभी अंगड़ाइयाँ लेता है और कभी खाँसता है । वह तित्य (तेरे मन के संकल्प-विकल्प रूपी विचारों के) तीर्थों पर स्नान करता है । वर्षभर निर्वसन रहता है । (तेरा शरीर ही उसका वसन है) अर्थात् वह तेरे भीतर (पास) है, उसे (रे मनुष्य ! ) तू ढूँढ ले ॥ ८ ॥

आयस कमि दिशि तु कमि वते,  
गछु कमि दिशि कवु जानु वथ ।

अनति दाय लगिमय तते,  
छेनिस फौकस कांह ति नो सथ ॥ ९ ॥

कया विशा केन पथागताहं  
पश्चाद्गमिष्यामि पथाऽथ केन ।

इत्थं गतिं वेप्सि निजां न तस्मात्  
उच्छ्वासमात्रेण धृतिं भजामि ॥ ९ ॥\*

मैं किस दिशा और किस मार्ग से आई, नहीं जानती । किस दिशा और किस मार्ग से (वापस) जाऊँगी, यह भी नहीं जानती । (दिशा-बोध हो सकता है) जब अन्ततः मुझे कोई सत्परामर्श दे । क्योंकि मात्र साधन (योग, प्राणायाम आदि) पर अवलंबित रहने में कोई सार ॥ ९ ॥



आसा बोल कडिन्यम सासा,  
 मै मनि वासा खीद ना ह्ये ।  
 बाँ योद सहजु शंकरु बंखुज आसा;  
 मंकरिस सासा मल क्या पेये ॥ १० ॥

अवाच्यानां सहस्राणि  
 कथयन्तु न मन्मनः ।

मालिन्यम् एत्युदासीनं  
 रजोभिर् मुकुरो यथा ॥ १० ॥\*

मेरे लिए चाहे कोई अपने मुँह से हजार गालियाँ भी क्यों न निकाले,  
 मेरे मन के वासी को (आत्मा को) उससे किसी तरह का खेद नहीं  
 पहुँचेगा । मैं अगर सहज (स्वात्म) शंकर की भक्त हूँ तो भला मेरे  
 मन-दर्पण पर मैल कैसे जम सकती है ? ॥ १० ॥

कंचव गेह तैज्य कंचव वनवास,  
 वेफोल मन ना रंठिथ तु वास ।  
 दान राथ गंजरिथ पनुन श्वास,  
 युथुय छुख तु त्युथुय आस ॥ ११ ॥

कति गता गहनं गृहत्यागिनो  
 विफलिता अवशीकृतमानसाः ।

विगणयन्निज प्राण परिक्रियां  
 परिलभस्व सदा निजतोषणम् ॥ ११ ॥

कइयों ने घर त्याग दिए और वनवास करने लगे । किन्तु तब तक  
 यह सब विफल है जब तक कि (चंचल) मन को वश में नहीं किया जाता  
 (रे मनुष्य ! ) तू दिन-रात (ध्यानपूर्वक) अपने श्वासोच्छ्वास की गिनती  
 कर अर्थात् अपने जन्म को बहुमूल्य समझ कर उसकी रक्षा कर । तू जिस  
 स्थिति में है, उसी से संतुष्ट रह ॥ ११ ॥

कैह छी नैदरि हंती बुदी,  
 कैजन वुद्यन न्यसर पेयी ।  
 कैह छी सनान करिथ अपुती;  
 कैह छी गेह बंजिथ ति अक्री ॥ १२ ॥

कश्चित् प्रसुप्तोऽपि विबुद्ध एव  
 कश्चित् प्रबुद्धोऽपि च सुप्ततुल्यः ।

स्नातोऽपि कश्चिदशुचिर्मतो मे  
 भुक्त्वा स्त्रियं चाप्यपरः सुपूतः ॥ १२ ॥\*

कुछ (व्यक्ति ऐसे होते हैं जो) निद्रामग्न होकर भी जागृत रहते हैं ।  
 कुछ जागृत होने पर भी निद्रामग्न रहते हैं । कुछ स्नान करने पर भी  
 अपवित्र ही रहते हैं तथा कुछ घर (गृहस्थी) करने पर भी अक्रिय अर्थात्  
 निर्लिप्त रहते हैं ॥ १२ ॥

क्याह करु पांजन दहन तु कहन,  
 वौखशुन यथ लेजि करिथ यिम गये ।  
 सारी समुहन यथ रजि लमुहन,  
 अदु क्याजि राविहे कहन गाव' ॥ १३ ॥

पञ्च चैव विकारा दश तथैकादश संख्यकाः ।  
 गता विहाय मे देहं भिन्न-भिन्नानुसार्गगाः ।  
 यदि ते गां हि कर्षेयुरेक मार्गानुसारतः ।  
 अहो मदीया धी-धेनुः कथं भूयात् कुमारगा ॥ १३ ॥

इन पाँच (तत्त्वों), दस (विकारों) और ग्यारह (पाँच कर्मेन्द्रियाँ,  
 पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन) का क्या करूँ । ये सब मेरी हड्डियाँ  
 (देह) को खाली कर गये । (सभी भिन्न दिशाओं की ओर जा रहे हैं)  
 काश ! ये सभी मिलकर एक ही दिशा में रस्सी को खींचते तो भला फिर  
 ग्यारह की देखरेख रहते भी गाय कैसे भाग सकती थी ? ॥ १३ ॥

१ 'कहन गाव रावुन्य' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है अत्यधिक सावधानी के बाद  
 किसी चीज का खो जाना । मुहावरे का शाब्दिक अर्थ है—ग्यारह (ग्वालों) की  
 देखरेख से गाय का भाग जाना ॥ १४ ॥



कुश पोश तेल दुफ जल ना गछे,  
सदबावु गौरु कथ युस मनि ह्ये ।  
शम्बूहस सौरि नैत्य पनुनि येछे,  
सोय दपिजे संहजु अक्रेय ना ज्ये ॥ १४ ॥

पुष्पादिकं ब्रव्यमिदं न तस्य  
पूजामु सर्वमुपयोगि किञ्चित् ।  
गुरुपदेशाद् दृढया च भक्त्या  
स्मृत्यार्च्यते येन विशुद्ध आत्मा ॥ १४ ॥\*

(साधना के लिए) कुशा, तेल, दीप, जल आदि की कोई आवश्यकता नहीं है । सद्भाव से जो गुरु की बात मन में उतारे और नित्य भावना शंभु का स्मरण करे, वह कर्म-बंधन से मुक्त हो कर सहज-आनन्द में तल्लीन हो जाता है ॥ १४ ॥

खयथ गंडिथ शैमि ना मनस,  
ब्रांथ यिमव त्राव तिमय गंयि खंसिथ ।  
शास्तुर बूजिथ छु यमु बयि क्रूर,  
सु ना पौत्र तु दंती लंसिथ ॥ १५ ॥

खादनाद् भूषणाद्वापि  
मनो यस्य गतभ्रमम् ।  
स मुक्तो नोत्तमर्णाद्यो  
गृह्णात्यर्थं हि सोऽनृणः ॥ १५ ॥\*

(मात्र) खाने और पहनने से मन को शांति नहीं मिलती । जिन्होंने मिथ्या आशाओं को त्याग दिया, दरअसल वही उन्नति के शिखर पर चढ़ गये । शास्त्र सुन-सुनकर यम-भय बड़ा क्रूर दिखने लगता है । जो इन शास्त्रों के चक्कर में नहीं पड़ा अर्थात् जिसने उधार नहीं लिया, वही धनी है, आनन्द का भागीदार है ॥ १५ ॥

ग्यानुक्य अम्बर लागिथ तने,  
यिम पद ललि दंप्य तिम हृदि अंख ।  
कारुन्य प्रनावुक्य लय कौर लले,  
ज्यथ जोति कोमुन मरनुन्य शंख ॥ १६ ॥

ज्ञानाम्बरेण परिभूषय भो! निजाङ्गम्  
लल्लोक्त पावनपदैश्च विभूषयान्तः ।  
एवं यथा लल्ल गता स्वरूपं  
तथैव ते मरणभयं विधूयते ॥ १६ ॥

(हे मनुष्य ! तू) तन पर ज्ञान के अम्बर (वस्त्र) धारण कर, लल ने जो पद कहे, उन्हें अपने हृदय में उतार । ऐसा करने से जिस प्रकार लल (परम-शिव में) लीन हो गयी, उसी प्रकार तेरे चित्त में भी ज्योति उत्पन्न होगी और मरण की शंका लुप्त हो जाएगी ॥ १६ ॥

अभ्यास किनिय व्यकास फोलुम,  
सौ प्रकाश जोनुम यिहोय दीह ।  
प्रकाश खान मोरव यी दोरुम,  
सौख्य बोरुम कोरुम तिय ॥ १७ ॥

अभ्यासतोऽन्तर्जले नलिनं प्रफुल्लं  
ज्ञातं मया स्वभवने स्फुरति प्रकाशः ।  
कृत्वा प्रकाशमचलं निजध्यानयोगात्  
शश्वत्सुखे सततमग्नमना अभूवम् ॥ १७ ॥

अभ्यास से मेरे हृदय में (आत्म-ज्ञान रूपी) कमल विकसित हुआ और मैं जान गयी कि स्व-प्रकाश मेरी देह में ही स्थित है । तब मैंने ध्यानपूर्वक प्रकाश को स्थिर किया और नित्य सुख प्राप्त करने लगी ॥ १७ ॥



ललि मै दोपुख लूख हांड करनय,  
तवय ज्रजिम मनय शेंख ।  
माग नोवुम नार ज़ोलुम,  
क़ुहिन्य कोसम मनय शेंख ॥ १८ ॥

लल्ले जनास्तव विलोक्य विचित्रवेषं  
निन्दारता इति मुहुःसुजना अवोचन् ।  
तेनागमद् गोपनभाव आत्मनः  
शीतोष्णशोधिततया विमलं मनोऽभूत् ॥ १८ ॥

साधनावस्था में देख मुझे कई विचारवानों ने कहा कि लल, तुझे लोग पीड़ा पहुँचायेंगे, तेरी निंदादि करेंगे । मगर, इससे मेरे मन का डुराव और दूर हुआ । माघ मास की सर्दी से अपने तन को नहलाया और गर्मी को सहन किया, तब जाकर मन की काली इच्छाएँ समाप्त हो गयीं ॥ १८ ॥

गगन ज़ुय बूतल ज़ुय,  
ज़ुय दान पवन तु राथ ।  
अरुग ज़ंदन पोश पोन्थ ज़ुय,  
ज़ुय छुख सकलय तु लांग्यजि क्याह ॥ १९ ॥

आकाशो भूर्वायुरापोऽनिलश्च  
रात्रिश्चाहश्चेति सर्वं त्वमेव ।  
तत्कार्यत्वात्पुष्पमर्घादि च त्वं  
त्वत्पूजार्थं नैव किञ्चित्त्वभेदम् ॥ १९ ॥\*

तू ही गगन, भूतल भी तू ही । तू ही दिन, पवन और रात ।  
अर्घ्य, चंदन, पुष्प, पानी भी तू ही । तू ही सब कुछ है, तो फिर  
तुझे क्या चढ़ाऊँ ? ॥ १९ ॥

गाटुलाह अख वुछुम बौछि सूत्य मरान,  
पन जन हरान पुहनि वावु लाह ।  
नेश बौद अख वुछुम वाजस मारान,  
तनु लल्ल बौ प्रारान छैन्यम ना प्राह ॥ २० ॥

यथा पौषस्य वातेन पत्रहीनो भवेत् तरुः ।  
तथैव देहहीनोऽभूज्जनो बुद्धो बुभुक्षया ।  
अन्यच्च पाचको दृष्टस्ताड्यमानः कुबुद्धिना ।  
लल्लाहं तत्प्रतीक्षेणु भवबन्ध विमोक्षणम् ॥ २० ॥

(मैंने) एक प्रबुद्ध को भूख से मरते देखा, मानो पौष-पवन (पतझर) से जर्जरित हो रहा हो तथा एक रसोइए को एक निर्बुद्धि से पिटते देखा ।  
(इस विरोधाभास को देखकर) मैं लल उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगी जब मेरे भवबंधन छूट जाएँ ॥ २० ॥

ज़ु ना बौह ना दैय ना द्यान,  
गव पानय सरवुक्रिय मंशिय ।  
अन्तो ड्यूठुख केंह ना अनवय,  
गयि सथ लयि पर पशिय ॥ २१ ॥

त्वं नासि नाहं न च तत्रध्येयं  
ध्यानं न तत्रास्ति च सर्वकारकः ।  
पश्यन्ति नो तत्र च नेत्रहीना  
शिवं विपश्यन्ति गुणाभिरामाः ॥ २१ ॥

वहाँ न तू है, न मैं हूँ, न ध्येय है और न ध्यान । सर्वकयी (सर्व-  
कारक परब्रह्म) भी वहाँ खो जाते हैं । अन्धों को तो वहाँ कुछ नहीं  
दिखता किन्तु सहज गुणियों को परमशिव के दर्शन हो जाते हैं ॥ २१ ॥



जाजर छतुर रथ सिंहासन,  
हलाद, नाट्य रस तूला परयंक ।  
कथाह मोनिथ येति सिथुर आसुवन,  
कोजनु कासीय मरुनुन्य शंक ॥ २२ ॥

सिंहासनं चामरछत्रसंयुत  
माल्लादकं मोहक भोगसाधनम् ।  
किं तत् स्थिरं चिन्तयसि स्वमानसे  
ज्ञातं, त्वया मरणभयं न ज्ञातम् ॥ २२ ॥

चैवर, छत्र, रथ, सिंहासन, आल्लाद, नाट्य-रस, रेशमी पर्यंक आदि को (रे मनुष्य ! ) तूने क्या इस संसार में स्थिर माना है ? (ये सारे ऐश्वर्य भोग के साधन अस्थिर हैं, स्थिर अगर कोई वस्तु है तो वह हैं) मरने की शंका, जिसे तू भुला बैठा है ॥ २२ ॥

तुरि सलिल खोत तांय तुरे,  
हिमि त्रे गंयि व्यन अव्यन विमरशा ।  
जयतनि रव बाति सब समय,  
शिव मय जराज्जर जगपशा ॥ २३ ॥

मायाजाड्यं तज्जडं बोधनीरं  
संसृत्याख्यं तद्धनत्वं हिमं च ।  
चित्सूर्येऽस्मिन् प्रोदिते त्रीणि सद्यो  
जाड्यान्मुक्तं नीरमाद्यं शिवाख्यम् ॥ २३ ॥\*

सलिल को जब (अत्यधिक) शीत अभिभूत कर लेती है तो वह जम जाता है अथवा हिम बन जाता है । विमर्श से काम लिया जाय तो इन तीन रूपों (सलिल, जमने की क्रिया व हिम) में तत्त्वतः कोई भिन्नता नहीं है । जब चैतन्य (विवेकरूपी) सूर्य इन पर चमकेगा तो ये सब किसकी करेगा ? अतः अपने मन और पवन (प्राण) को एकीकृत कर एक समान हो जाएँगे और तब बराबर जग शिवमय दिखाई देगा ॥ २३ ॥

दीहचि लरि दारि बर त्रौपुरिम,  
प्राणु जूर रौटुम तु द्युतमस दम ।  
हृदयिचि कूठुरि अन्दर गौडुम,  
ओमुकि चोबुकु तुलमस बम ॥ २४ ॥

सम्यङ्निरुद्धा निजकायमार्गा  
मया गृहीतो हृदि प्राणचौरः ।  
नावं चकाराति मुहुः प्रताडित  
ओङ्कारकायान्नु कशामिधातात् ॥ २४ ॥

अपने देहरूपी मकान की खिड़कियाँ व दरवाजे बंद कर मैंने उसमें प्राणरूपी चोर को पकड़ लिया और उसे बंद कर दिया । फिर हृदय की कोठरी में उसे बाँधकर ओऽम् के चाबुक से उसको पीट-पीटकर गुंजा दिया यानी सहज नाद गूँज उठा ॥ २४ ॥

दीव वटा दिवुर वटा,  
प्यठ बीन छु यीकुवाठ ।  
पूज कस करख होटु बटा,  
कर मनस तु पवनस संगाठ ॥ २५ ॥

चैत्यं देवो निर्मितौ द्वौ त्वया यौ  
पूजाहेतोस्तौ शिलातो न भिन्नौ ।  
देवोऽमेयश्चित्स्वरूपो विधेयं  
तद्व्याप्त्यर्थं प्राणचित्तैक्यमेव ॥ २५ ॥\*

देव भी पत्थर है और देवल (मन्दिर) भी पत्थर है । ऊपर नीचे पूजाहेतोस्तौ (पाषाणमय) स्थिति है । (इसलिए) रे पंडित ! तू पूजा देवोऽमेयश्चित्स्वरूपो (एक-सी) विधेयं (इसी में सार है) ॥ २५ ॥



दमी डीठुम गंज दजुवुनी,  
 दमी ड्यूठुम दुह न तु नार ।  
 दमी डीठुम पांडुवनहुंज मांजी,  
 दमी डीठुम क्राजी मास ॥ २६ ॥

क्षणेन दृष्टं ज्वलितमृजीषं  
 क्षणेन नागिनं च धूमरेखा ।  
 क्षणेन कुन्ती मुदिता पुनः शुचा  
 घटस्य कर्तुहि गृहं समाश्रिता ॥ २६ ॥

अभी जलता हुआ चूल्हा देखा, और अभी उसमें न धुआँ देखा और न आग । अभी पांडवों की माता को देखा, और अभी उसे एक कुम्हारिन के यहाँ शरणागता मौसी के रूप में देखा । (समय के खेल को कोई नहीं जान सका है ! ) ॥ २६ ॥

दमी डीठुम नद वहवुनी,  
 दमी ड्यूठुम सुम न तु तार ।  
 दमी डीठुम थर फौलुवुनी,  
 दमी ड्यूठुम गुल न तु खार ॥ २७ ॥

सद्यो वहन्तीह नदी विलोकिता  
 न तत्र सेतुर्न च तरणसाधनम् ।  
 विलोकिता पुष्पसमन्विता लता  
 पुनर्न पुष्पं न च कण्टकं ततः ॥ २७ ॥

अभी मैंने बहती हुई नदी को देखा, और अभी उसपर न कोई सेतु देखा और न पार उतरने के लिए पुलिया ही । अभी खिली हुई फूलों की एक डाली देखी, और अभी उसपर न गुल (सुमन) देखे और न कांटे ॥ २७ ॥

दमी ड्यूठुम शबनम प्यवान,  
 दमी ड्यूठुम प्यवान सूर ।  
 दमी डीठुम अनिगटु रातस,  
 दमी ड्यूठुम दौहस नूर ॥ २८ ॥

नीहारविन्दुपतनेन निरीक्षिता श्रीः  
 तत्रैव नेत्रपथगस्तु हिमप्रपातः ।  
 जाता विकारवशांता तमसा तमिस्रा  
 दृष्टस्तदैव दिवसे मधुरः प्रकाशः ॥ २८ ॥

अभी शबनम को गिरते देखा और अभी पाला पड़ते देखा । अभी रात में अन्धकार को देखा और अभी दिन में नूर (प्रकाश) देखा ॥ २८ ॥

दमी आसुस लौकट कूरा,  
 दमी सपनिस जवां पूर ।  
 दमी आसुस फेरान थोरान,  
 दमी सपनिस दजिथ सूर ॥ २९ ॥

प्रागहं बालिकाऽभूव  
 पश्चाद् यौवनशालिनी ।  
 अहो गतिमती भूत्वा  
 साम्प्रतं भस्मतां गता ॥ २९ ॥

अभी मैं एक छोटी लड़की थी और अभी पूरी जवान बन गयी ।  
 अभी मैं चलती-फिरती थी और अभी जल कर राख हो गयी ॥ २९ ॥



नाबुद्ध बारस अटु गंड ड्यौल गोम,  
 देह कान हौल गोम ह्यकु क्यहो ।  
 गौरु सुंद वनुन रावन त्योंल प्योम,  
 पहलि रौस ख्यौल गोम ह्यकु क्यहो ॥ ३० ॥

अद्यावधि सिताभारोद्धृतोऽग्रे धार्यते कथम् ।  
 धनुर्वण्डसमोदेहो भुग्नो भारोहि बाधते ।  
 न रुचितो गुरुनिर्देशः सावहेलं पृथग्गता ।  
 अधुना हन्त दिङ्मूढा यथाऽजा पालकं विना ॥ ३० ॥

(जिस) मिश्री (सांसारिक सुख-संपदाओं) की गठरी (मैं कन्धे पर ढो रही थी उस) की गांठ ढीली पड़ गयी। देह कमान के समान झुक गयी। अब भला यह भार कैसे वहन कर सकूंगी। ऊपर से गुरुपदेश को भी कड़ुआ जानकर अवहेलना की। अब तो मेरी हालत गड़रिए के बिना रेवड़ (भेड़ों के समूह) की जैसी हो गयी है। भला यह भार अब कैसे वहन कर सकूंगी ! ॥ ३० ॥

नाथा ! ना पान ना पर जोनुम,  
 सदाय बोदुम यि कौ दिह ।  
 जु वो बो जु म्युल नो जोनुम,  
 जु कुस बो कौसु छु संदिह ॥ ३१ ॥

नाथ न त्वं न चात्मापि  
 ज्ञातो देहाभिमानतः ।

स्वस्यैक्यं च त्वया तेन  
 का आवामिति संशयः ॥ ३१ ॥\*

हे नाथ ! न मैंने (कभी) अपने (स्व) को और न (कभी) पर को जानने की कोशिश की। सदैव इस कुदेह की चिंता करती रही। तू मैं, और मैं तू—इस मेल को भी कभी न जान सकी। मैं तो इसी सन्देह में पड़ी रही कि तू कौन और मैं कौन ! ॥ ३१ ॥

नियम कर्योथ गरबा,  
 ज्यतस कर बा पेयी ।  
 मरुनु ब्रौठुय मर बा,  
 मरिथ तु मरतबु हुरी ॥ ३२ ॥

गर्भवासे प्रतिज्ञातं  
 विस्मृतं किन्तु कारणम् ।  
 भव जीवन्मृतो येन  
 पद्यसे परमं पदम् ॥ ३२ ॥

गर्भवास में (तूने रे मनुष्य ! ) (आत्म-चित्तन का जो) नियम पाला था, उसे तू भूल क्यों गया ? (अभी भी मौक़ा है) तू मरने से पहले ही मर जा क्योंकि मर के ही मरतबा (पद, यश) बढ़ता है ॥ ३२ ॥

प्रथुय तीरथेन गछान संन्ययासं,  
 गारान सौदरशनु म्यूल ।  
 चित्ता परिथ मव निशपथ आस,  
 डेशख दूरे द्रमुन न्यूल ॥ ३३ ॥

यत्नेन मोक्षैकधियः सदासी  
 संन्यासिनस्तोर्थवरान् प्रयान्ति ।  
 चित्तैकसाध्यो न स लभ्यते तै-  
 दूर्वास्थलं भात्यतिनीलमारात् ॥ ३३ ॥\*

(परब्रह्म के) सुदर्शन हेतु संन्यासी प्रत्येक तीर्थ में जाता है। (पर उसे नहीं मालूम कि परब्रह्म उसके चित्त में ही है) रे मनुष्य ! तू अपने चित्त को पढ़ और इस निष्पथ (तीर्थाटन आदि) को त्याग दे। तीर्थयात्रा झूठ से घास का नीला दिखने के बराबर है (अर्थात् दूर के ढोल सुहावने वाली बात है) ॥ ३३ ॥



ज्ञान तय दान क्याह सन करिय,  
 ज्यतस रठ तकरुय वग।  
 मनस तु पवनस मिलवन कर,  
 सहजस मंज कर तिरथ स्नान ॥ ३४ ॥

स्नानेन ध्यानेन कथं भविष्यति  
 कार्यस्य सिद्धिरवशीकृतात्मना।  
 प्राणस्य मनसा सह योजनेन  
 सहजस्वरूपे कुरु स्नानमत्र ॥ ३४ ॥

स्नान और ध्यान से भला क्या होगा ! तू अपने चित्त की  
 लगाम को ज़रा मजबूती से पकड़। मन और पवन को मिला दे तथा  
 सहज (परम शिव) के तीर्थ में स्नान कर ॥ ३४ ॥

पानस लागिथ रुदुख में जु,  
 में जे छांडान लूसुम दोह।  
 पानस मंज येलि ड्यूठुख में जु,  
 में जे तु पानस द्युतुम छोह ॥ ३५ ॥

देहाविषट्कोशपिधानतस्त्वा-  
 मप्राप्य खिन्नास्मि चिरं महेश।  
 उपाधिनिमुक्तविबोधरूपं  
 ज्ञात्वाद्य विश्रान्तिमुपागताऽहम् ॥ ३५ ॥\*

तुम मेरे भीतर छिपे रहे और मैं तुम्हें दिन-रात (बाहर) ढूँढ़ती  
 रही। (जिस दिन) तुम्हें अपने भीतर छिपा पाया (उस दिन से) मुझे  
 अभिन्नत्व का बोध हो गया और मैं आनंदमग्न होकर झूम उठी ॥ ३५ ॥

पर तांय पान येम्य सोम मोन,  
 येम्य ह्युव मोन दान क्योंह राथ।  
 येम्यसुय अदुय मन सांपुन,  
 तमी ड्यूठुय सुरु गुरु नाथ ॥ ३६ ॥

आत्मा परो दिनं रात्रिर्यस्य सर्वमिदं समम्।  
 भातमद्वैतमनसस्तेन दृष्टोऽमरेश्वरः ॥ ३६ ॥\*

जिसने पर और स्व को समान माना, जिसने दिन और रात को एक  
 माना, जिसका मन अद्वय बन गया, उसी ने सुरुगुरु नाथ (अमरेश्वर) के  
 दर्शन किये ॥ ३६ ॥

ब्रोंठ कालि आसन तिथी केरन,  
 टंग जूँठ्य पपन जेरन सूत्य।  
 माजि कोरि अथुवास करिथ नेरन,  
 दोह द्यन बरन परद्यन सूत्य ॥ ३७ ॥

आगामि - कालस्य कुलक्षणं यत्  
 कालानपेक्षी फलपाकयोगः।  
 वास्यति स्वकन्यां परकामुकाय  
 जननी धनार्थं न जुगुप्सितं स्यात् ॥ ३७ ॥

आने वाले समय के (कलियुग के) लक्षण कुछ ऐसे होंगे कि नाश-  
 कातियाँ और सेव-खूबानियों के साथ पकेंगे (यद्यपि दोनों भिन्न मौसम में  
 पकते हैं) और माताएँ (अपनी) पुत्रियों के संग बाहों में बाँहें डाले औरों  
 के यहाँ दिन बिताएँगी ॥ ३७ ॥



वान गोल तांय प्रकाश आव जूने,  
 चंद्र गोल तांय मोतुय ज्यथ ।  
 ज्यथ गोल तांय केह ति ना कुने,  
 गंय बूर बुवह सौर व्यसरजिथ क्यथ ॥ ३८ ॥

भानौ नष्टे काशते चन्द्रबिम्बं  
 तस्मिन्नष्टे काशते चित्तमेव ।  
 चित्ते नष्टे दृश्यजातं क्षणेन  
 पृथ्व्यादीदं गच्छति क्वापि सर्वम् ॥ ३८ ॥\*

भानु (सूर्य) के गलने पर चन्द्रमा में प्रकाश आता है । चन्द्र के गलने पर चित्त प्रकाशित हो जाता है । चित्त के गल जाने पर कहीं कुछ नहीं रहता तथा 'भूर्भुवःस्वः' अस्तित्व-शून्य हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

कुस डिगि तु कुस जागि,  
 कुस सर वतरि तेलि ।  
 कुस हरस पूजि लागि,  
 कुस परमु पद मेलि ॥ ३९ ॥

सुप्तः कः कः प्रबुद्धश्च  
 किं सरो यन्तु रिष्यति ।  
 किं वस्तु यद् हरस्यार्च्यं  
 प्राप्यं किं परमं पदम् ॥ ३९ ॥

कौन सोया हुआ है और कौन जागा हुआ है ? वह कौन-सा सरोवर है जिससे बूंद-बूंद रिसती है ? वह कौन-सी वस्तु है जो हर (शिव) के लिए पूजनीय है ? वह कौन-सा परमपद है जो (साधनोपरान्त) प्राप्य है ? ॥ ३९ ॥

मन डिगि तु अकौल जागि,  
 दाड्य सर पंचुयिदरिय वतरि तेलि ।  
 सौव्यजारु पोन्ग हरस पूजि लागि,  
 परमु पद जेतनु शिव मेलि ॥ ४० ॥

सुप्तं मनो जागरणं तदात्मनः  
 सरो निरुद्धेन्द्रियपञ्चकं स्रवेत् ।  
 शिवाभिषेको हि जलेन तेन  
 शिवोपलब्धिर्हि परं पदं स्यात् ॥ ४० ॥

जब मन सो (तल्लीन हो) जाता है तो 'अकुल' अर्थात् अन्तरात्मा जागृत हो जाती है । सुदृढ़ रहने वाली पंचेन्द्रियों से उसपर स्वात्म-चित्तन के जल की पूजा होती है और तब शिव-चैतन्य का परमपद मिलता है ॥ ४० ॥

मंकरिस मल जन जौलुम मनस,  
 अदु लंबुम जैनिस जान ।  
 सु येलि ड्यूठुम निशि पानस,  
 सोरुय सुय तु बु नो केह ॥ ४१ ॥

चित्तादर्शं निर्मलत्वं प्रयाते  
 प्रोबुधता मे स्वे जने प्रत्यभिज्ञा ।  
 दृष्टो देवः स्वस्वरूपो मयासौ  
 नाहं न त्वं नैव चायं प्रपञ्चः ॥ ४१ ॥\*

जब मेरे मन-दर्पण की मेल धुल गई तो मुझे आत्म-ज्ञान हो गया तथा उसे (शिव को) अपने में ही स्थित पाया । मैंने देखा कि वही सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं ॥ ४१ ॥



कुस पुश तु कौसु पुशानी,  
 कम कुसुम लाग्यज्यस पूजे ॥  
 कवु गौड दिज्यस जलुचि दानी, 6  
 कवु सनु मंतुरु शंकर स्वात्मु वुजे ॥ ४२ ॥

कः पौष्पिकः कापि च तस्य पत्नी  
 पुष्पेश्र कैर्देववरस्य पूजा ।  
 कार्या तथा किं गडुकं विधेयं  
 मंत्रश्च कस्तत्र वद प्रयोज्यः ॥ ४२ ॥\*

माली कौन ? और मालिन कौन ? कौन से कुसुम उसकी पूजा में चढ़ाओगे ? किस जल से उसका अभिषेक करोगे ? और वह मंत्र कौन-सा है जिससे स्वात्म-शंकर के लिए प्रयोज्य (अभिमंत्रण योग्य) है ? ॥ ४२ ॥

मन पुश तय यछ पुशानी,  
 बावुक्य कुसुम लाग्यज्यस पूजे ।  
 शेशि रसु गौडु दिज्यस जलु दानी,  
 छोपि मंतुरु शंकर स्वात्मु वुजे ॥ ४३ ॥

इच्छामनोभ्यां ननु पौषि-  
 मादाय पुष्पं दृढभावनाख्यम् ।  
 स्वानन्दपूरैर्गडुकं च दत्त्वा  
 मौनाख्यमंत्रेण समर्चयेशम् ॥ ४३ ॥\*

मन माली और जिज्ञासा मालिन । भाव-कुसुमों से उसकी पूजा करना । शशिरस (अमृत जल) से उसका अभिषेक करना और तब मौन रूपी मंत्र-जाप से स्वात्म-शंकर की आराधना करना ॥ ४३ ॥

मल वौदि जोलुम,  
 जिगर मोरुस ।  
 तेलि लल नाव द्राम,  
 येलि दंत्य त्राव्यमस तंत्य ॥ ४४ ॥

ततोऽत्र वृष्ट्वावरणानि भूयो  
 ज्ञातं मयात्रैव भविष्यतीति ।  
 भङ्क्त्वा यदा तानि च संप्रविष्टा  
 लल्लेति लोके प्रथिता तदाहम् ॥ ४४ ॥\*

U. 3. 1.

(जब) मैंने हृदय की सारी मैल जला डाली, जिगर (इच्छाओं) को भी मार डाला और उनके द्वार पर अंचल पसारे जमकर बैठ गई, तब कहीं जाकर मेरा लल नाम प्रसिद्ध हो पाया ॥ ४४ ॥

मारुख मारुबोथ काम कूद लूब,  
 नतु कान बरिथ मारुनय पान ।  
 मनय खयन दिख स्व व्याज्जारु शम,  
 विशय तिहुंद क्याह क्युथ द्रूव जान ॥ ४५ ॥

काम क्रोधादिकान् शत्रून्, नाशयात्मविनाशकान् ।  
 सव्विचारेण ते शान्तिं गमिष्यन्ति न संशयः ।  
 विषयाः सन्ति के तेषां दृढं सम्यग् विचारय ।  
 एवं कृतप्रयत्नस्त्वं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ४५ ॥

काम, क्रोध और लोभ घातक हैं, (रे मनुष्य ! ) इनको मारकर समाप्त कर दे, अन्यथा ये तुझे ही अपने तीरों से मार देंगे । इन्हें सुविचारों के खाद्य द्वारा शांत स्थिति में ले आ और उनके विषय क्या हैं, यह दृढ़ता से जानने की कोशिश कर ॥ ४५ ॥



मूढ जानिथ पशिथ ति कौर,  
 कौल श्रुत वौन जडुरुफ आस ।  
 युस यि दपी तस ती बोल, 192  
 यिहोय तत्त्व विदिस छु अब्यास ॥ ४६ ॥

ज्ञात्वा सर्वं मूढवत्तिष्ठ स्वस्थः

श्रुत्वा सर्वं श्रोत्रहीनेन भाव्यम् ।

वृष्ट्वा सर्वं तूर्णमन्धत्त्वमेहि  
 तत्त्वाभ्यासः कीर्तितोऽयं बुधेन्द्रैः ॥ ४६ ॥\*

(रे मनुष्य ! तू) जानते हुए भी मूढ़ बन, देखते हुए भी चक्षुहीन बन, सुनते हुए भी बहरा बन और जागृत होते हुए भी जड़-रूप बन । जो जैसा कहे उसके साथ वैसा ही बोल । यही तत्त्वविद् का अभ्यास है ॥ ४६ ॥

यथ सरस सिरि फौल ना वैज्री,  
 तथ सरु सकली पोन्थ च्यन ।  
 मृग सृगाल गंड्य जलु हंसती, 196  
 ज्यन ना ज्यन तु तौतुय प्यन ॥ ४७ ॥

सरोवरे यत्र न सर्षपस्य

कणोऽपि मात्पेव विचित्रमेतत् ।

विवर्धते तत्पयसा समस्तं

यावत्प्रमाणं खलु देहिजातम् ॥ ४७ ॥\*

(कैसी विडम्बना है कि) जो सरोवर चावल के एक दाने तक को अपने में समा नहीं सकता अर्थात् सुरक्षित नहीं रख सकता, उसी सरोवर के पानी से सबकी प्यास बुझती है । (मृग, शृगाल, गंडा और जलहस्ति आदि) सब इसी जल से उत्पन्न होते हैं और इसी में समा जाते हैं । (इस संसार में सब-कुछ नश्वर है) ॥ ४७ ॥

यवु तुर ज्रलि तिम अम्बर ह्यता,  
 ख्यौद यवु गलि तिम आहार अन ।  
 ज्यता सौ परव्यञ्जारस प्यता,  
 ज्यनतन यि देह वन कावन ॥ ४८ ॥

शीतार्थं वसनं ग्राह्यं क्षुधार्थं भोजनं तथा । 197  
 मनो विवेकितां नेयमलं भोगानुचिन्तनैः ॥ ४८ ॥\*

ठंड दूर करने के लिए अम्बर (वस्त्र) धारण करे; क्षुधा मिटाने हेतु आहार ग्रहण कर ले । रे चित्त ! किन्तु (जिससे तुझे आनंद की प्राप्ति हो) उस स्व और पर का विचार कर, चिंतन कर ले, नहीं तो अंत में तेरी यह देह वन्य कौओं का आहार बनेगी ॥ ४८ ॥

यि यि करुम कौरुम सु अरजुन,  
 यि रसनि व्यञ्जोरुम ती मंथुर । 198  
 योहय लोगमो दिहस परजुन,  
 सुय यि परमु शिवुन तंथुर ॥ ४९ ॥

करोमि यत्कर्म तदैव पूजा  
 वदामि यच्चापि तदैव मंत्रः ।

यदेव चायाति तथैव योगाद्-  
 द्रव्यं तदेवास्ति ममात्र तन्त्रम् ॥ ४९ ॥\*

मैंने जो-जो कर्म किए वही मेरी अर्चना है, जो रसना (जीभ) से उच्चारित किया वही मेरे मंत्र हैं । देह से यदि कोई काम लिया तो वह परिचय-प्रत्यभिज्ञा (यह ज्ञान कि परमेश्वर और जीवात्मा एक है); और वास्तव में, परम-शिव के तंत्र का सार भी यही है ॥ ४९ ॥



यिहय मातृ रूप पय दिये,  
यिहय बास्यया रूप करि विशेष ।  
यिहय माया रूप अंति जुव हेये,  
शिव छुय कूठ तु जेन वीपदेश ॥ ५० ॥

भार्यारूपेण या नारी, तर्पयेन्नरवासनाम् ।  
मातृरूपेण सा नारी, वात्सल्यं वितनोति हि ।  
विपरीता तु माया सा, प्राणानपहरिष्यति ।  
शिवस्य दर्शनं न स्यादुपदेशं विचारय ॥ ५० ॥

(नारी की महिमा के सम्बन्ध में लल कहती है :—) मातृ-रूप में यह पय (दूध) पिलाती है, भार्या-रूप में विषय-वासना की तृप्ति करती है और अन्ततः माया रूप में प्राण हरण कर लेती है। शिव-प्राप्ति कठिन है, (रे मनुष्य ! ) इस उपदेश को तू सावधान होकर समझ ले ॥ ५० ॥

युस यि करुम करि प्यतरुन पानस,  
अरजुन बरजुन बैयिस क्युत ।  
अंति लागि रौस्त पुशिरुन स्वात्मस,  
अदु यूर्य गछि तु तूर्य छुस ह्यौत ॥ ५१ ॥

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं लभते फलम् ।  
नान्यस्तु फलभागी स्यात् स्वात्मैव फलभुग्भवेत् ।  
फलकामो न कुर्यान्निःस्पृहः कार्यमाचरेत् ।  
अर्पयित्वात्मने सर्वं कल्याणं लभते परम् ॥ ५१ ॥

जो जैसा कर्म करेगा उसका वैसा फल उसे भुगतना पड़ेगा। दूसरे उसमें भागीदार नहीं हो सकते। मनुष्य को चाहिए कि वह निःस्पृह होकर कर्मफल को स्वात्म (परमात्मा) के ऊपर छोड़ दे। फिर जहाँ कहीं भी जाएगा वहाँ उसका हित होगा ॥ ५१ ॥

हे गौरा परमेश्वरा,  
बाकाम ज्यै छुय अन्तर व्योद ।  
दोशवय वीपदान कंदुपुरा,  
हह कवु तुरुन तु हा हा कवु तोत ॥ ५२ ॥

गुरो ममैतमुपदेशमेकं  
कुरुष्व बोधाप्तिकरं दयातः ।  
हा - हः इमौ स्तः सममास्यजाता-  
वुष्णोऽस्ति हाः किमथ हः सुशीतः ॥ ५२ ॥\*

हे मेरे गुरु-परमेश्वर ! आप अन्तर्यामी (सर्वज्ञ) हैं, अतः मुझे जरा यह समझाइए कि श्वास-प्रश्वास दोनों भीतर से उद्भूत होते हैं, मगर फिर भी हा ! हा ! गर्म क्यों और हू ! हू ! शीतल क्यों ? ॥ ५२ ॥

सौय शिल पीठस तु पटस,  
सौय शिल छय प्रथिवोन देश ।  
सौय शिल शूबुवनिस ग्रटस,  
शिव छुय कूठ तु जेन वीपदेश ॥ ५३ ॥

यथा शिलैकैव स्वजातिभेदात्  
पीठादिनानाविधरूपभागिनी ।  
तथैव योऽनन्ततया विभाति  
कण्ठेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ५३ ॥\*

जो शिला पीठ (चौकी) में लगी है, वही सड़क पर भी है। जो शिला पृथ्वी-तल पर है वही शिला चक्की में भी शोभायमान है। (मूल-तत्त्व एक है पर स्वरूप भिन्न-भिन्न दिखते हैं) इसी प्रकार शिवत्व का ज्ञान भी कठिन है, (रे मनुष्य ! ) इस उपदेश को तू सावधानी पूर्वक समझ ले ॥ ५३ ॥



रव मत् थलि थलि ताप्यतन,  
ताप्यतन वीतम देश ।

वरुन मत् लूक् गरु अञ्जयतन, 212  
शिव छुय कूठ तु जेन वीपदेश ॥ ५४ ॥

स्थले स्थले स्वैः किरणैर्यथा रविः

पतत्यभेदेन गृहेषु वाऽभ्रियम् ।

जलं तथा सर्वजगद्गृहेषु

कण्ठेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ५४ ॥\*

क्या यह संभव है कि रवि थल-थल को अर्थात् प्रत्येक स्थल को तापित (प्रकाशित) न कर केवल कुछ उत्तम (गिने-चुने) देशों (स्थलों) को ही तापित (प्रकाशित) करे। इसी प्रकार क्या यह संभव है कि वरुण (जल देव) प्रत्येक घर में प्रवेश किये बिना रह सकें। (अर्थात् जिस प्रकार सूर्य और वरुण बिना भेदभाव के सभी प्राणियों के लिए हितकारी हैं उसी प्रकार शिव भी सब का है, सब के लिए है।) बस, उसको समझना ज़रा कठिन है, यह उपदेश (बात) रे मनुष्य! तू जान ले ॥ ५४ ॥

राजस बाज्य येम्य करतल त्याज्य,

स्वरगस बाज्य छुय तफ तांय दान ।

संहजस बाज्य येम्य गौरु कथ पाज्य,

पाप पौन्य बाज्य छुय पनुनुय पान ॥ ५५ ॥

यः खड्ग-हस्तः स लभेत राज्यं

करोति पुण्यं लभते स नाकम् ।

गुरूपदेशे शिवदर्शनं स्यात् 214

नरो हि हेतुर्निज-पाप-पुण्ययोः ॥ ५५ ॥

जिसने तलवार उठाई वह राज्य का भागीदार बना। जिसने तप और दान किया वह स्वर्ग का भागीदार बना। जिसने गुरूपदेश को आत्मसात् कर लिया वह सहज (परमात्म-दर्शन) का भागीदार बना। (दरअसल, इस संसार में) पाप-पुण्य के कारणों का भागीदार मनुष्य स्वयं है ॥ ५५ ॥

राजु हमस आसिथ सपदुख कौलुय,  
कुसताम जौलुय क्याहताम ह्यथ ।

ग्रटु गव बंद तय ग्रटन ह्यौत गौलुय,  
ग्रटु वोल जौलुय फल फौल ह्यथ ॥ ५६ ॥

भूत्वापि त्वं राजमरालरूपः

कथं स्वतः सम्प्रति सूकतां गतः ।

कः सारमादाय गतस्त्वदीयं

यस्मान्निरुद्धं तव प्राणचक्रम् ॥ ५६ ॥ 216

(अंतकाल आने पर) राजहंस के समान होने पर भी (रे मनुष्य!) तुम गुंगे हो गये। जाने कौन तेरे भीतर से क्या लेकर भाग गया! तेरी (जीवन रूपी) चक्की रुककर बंद हो गई और चक्कीवाला (अन्नादि के सदृश) चैतन्य रूपी फल लेकर भाग गया ॥ ५६ ॥

लल बो द्रायस कपसि पोशिचि संजुय,

काड्य तु दून्य करनम यंजुय लथ ।

तुयि येलि खारिनम जाविजि तुये,

वोवुर्य वानु गंयम अलांजुय लथ ॥ ५७ ॥

कार्पास-पुष्प-कलिका-तुलनां वधाना

लल्लाहमन्न जगति प्रमुदा प्रफुल्ला ।

हा हन्त! तन्न निष्पीडन-चक्र-पिष्टा ।

पश्चाच्च चर्मतन्त्री-ध्वननेन ध्वस्ता ॥ ५७ क ॥

कणशो जर्जरा जाता पीड़ा-पीडित-दुर्भंगा ।

कुविन्दस्य गृहं प्राप्ता तन्त्रवाये विलम्बिता ॥ ५७ ख ॥

मैं लल उसी उमंग और चाव के साथ इस संसार में खिली थी जिस उमंग और चाव के साथ कपास के डण्ठल से फूल खिलता है। परन्तु बेलने की रगड़ और पिंजियारे (धुनिये) की धुनकी ने मेरी खूब गत बनाई और बारीक बनाते-बनाते मेरा कण-कण उखाड़ डाला। फिर जुलाहे के यहाँ पहुँचकर (करघे पर) मैं लटक गई ॥ ५७ ॥



लाचारि बिचारि प्रवाद कोरुम,  
नदोर छुवु तु हैयिव मा ।  
फीरिथ दुबारु जान क्याह वौनुम,  
प्रान तु रुहुन हैयिव मा ॥ ५८ ॥

असूचयं करुणस्वरेण जीवान्  
क्रेयं वृथा नश्वर-विश्व-पण्यम् ।  
चेत्क्रीणने प्रीणनमात्मनस्ते  
क्रेयाणि भो ! मानव-मानसानि ॥ ५८ ॥

लाचार और बेचारा होकर मैंने आर्त्त पुकार की कि यह संसार अस्थिर है, इसे खरीदने की कोशिश मत करना । (अर्थात् इसमें मत फँसना) । साथ ही यह भी पुकारा कि खरीदना है तो प्राणियों के प्राणों (दिलों) को खरीद लो ! ॥ ५८ ॥

वाख मानस कोल अकोल ना अते,  
छोपि मुदरि अति ना प्रवेश ।  
रोजान शिव शेखुथ ना अते ॥  
मोतियय कुंह तु सुय वौपदेश ॥ ५९ ॥

वाङ्मानसं च तन्मुद्रे शिवशक्ती कुलाकुले ।  
यत्र सर्वमिदं लीनमुपदेशं परं तु तत् ॥ ५९ ॥\*

(रे मनुष्य ! ) वह (परमशक्ति) वाणी, मन तथा कुलीनता-अकुलीनता की सीमाओं से परे है । मोन-मुद्राओं का भी वहाँ प्रवेश नहीं है । शिव और शक्ति भी वहाँ रहते नहीं हैं । (इन सबके अतिरिक्त) तुम्हारे पास जो शेष बचा है, वही परमोपदेश है ॥ ५९ ॥

शिव शिव करान हमसु गथ सोरिथ,  
छजिथ व्यवहार्य दान क्योह राथ ।  
लागि रोस्त अदुय युस मन करिथ,  
तस्य गथ प्रसन सुरु गोरु नाथ ॥ ६० ॥

शिवं जपन्तो हृदि हंसगत्या  
दिवानिशं ये परियापयन्ति ।

कुर्वन्त आसक्ति-विहीन-स्वान्तं  
तेषु प्रसन्नः सुरनाथ-शङ्करः ॥ ६० ॥

शिव-शिव करते (जपते) तथा हंस गति (सोज्ज्म) का ध्यान करते हुए जो दिन-रात व्यवहारी (गृहस्थ, संसारी) बना रहे और जो अपने मन को लाग रहित व द्वैत-शून्य बनाये, उसी पर सुरगुरुनाथ (परम शिव) नित्य प्रसन्न रहते हैं ॥ ६० ॥

शिव वा कीशव वा जिन वा,  
कमलजुनाथ नाम दारिन यियुह ।  
मे अबलि कास्यतन बवुरुज ॥  
सु वा, सुवा, सुवा, सु ॥ ६१ ॥

शिवो वा केशवो वापि जिनो वा ब्रुहिणोऽपि वा ।  
संसाररोगेणाक्रान्तामबलां मां चिकित्सतु ॥ ६१ ॥\*

(चाहे वे) शिव कहलाएँ, केशव कहलाएँ या जिन (तीर्थंकर) कहलाएँ । या फिर कमलजनाथ (ब्रह्मा) नाम धारण कर लें । चाहे वे-कुछ भी कहलाएँ, मुझ अबला को भवरुज (सांसारिक दुःखों) से मुक्ति दिला दें ॥ ६१ ॥



सिद्ध मालि सिदो सेद कथन कन थव,  
 चे दोह पय कालि सोरन क्याह ।  
 बालको तोह्य क्यथो यन राथ बैरिव,  
 काल आव कुठान तु कैरिव क्याह ॥ ६२ ॥

गुरुवर्य ! धैर्यविधुरा विरहे त्वदीये  
 रात्रिविवं कथमतो परियापयेम ।  
 कालस्य वीक्षण-क्षणे करवाम किंवा  
 बाला वयं किमपि बोधय बोधरूप ॥ ६२ ॥

हे सिद्धमौल गुरुजी ! मेरी सीधी-सी बात पर कान धरना । आपके बाद हम बालक अपने दिन-रात कैसे गुजारेंगे ? काल हमारी कठिन परीक्षा लेगा और भला तब हम क्या करेंगे ? ॥ ६२ ॥

ह्यथ कैरिथ राज फेरिना,  
 दिथ कैरिथ तपती ना मन ।  
 लूब व्यना जीव मरिना,  
 जीवंत मरि तांय सुय छुय ग्यान ॥ ६३ ॥

लब्ध्वापि राज्यं नहि तुष्टमन्तस्  
 त्यक्त्वापि राज्यं नहि शान्तिमेति ।  
 लोभं विना नैव मृतिर्जनस्य  
 लोभं जहीतीह विवेकवृत्तिः ॥ ६३ ॥

(यह कैसी विडंबना है कि) राज्य (ऐश्वर्य के साधन) पाकर व उसका उपयोग करने पर भी मन तृप्त नहीं होता और राज्य त्यागने पर भी मन को संतुष्टि नहीं होती । (दरअसल, लोभ ऐसी चीज है कि) विना लोभ के जीव मरता नहीं है (लोभ उसके साथ लगा रहता है) जीते जी मनुष्य मर जाए, वह इच्छा-लोभ को मार दे, यही ज्ञान की बात है ॥ ६३ ॥

हा मनशि ! क्याजि छुख वुठान सैकि लूर,  
 अमि रटि हामालि पकी नु नाव ।  
 ल्यूखुय यि नारांन्य करमुनि रुखि,  
 ति मालि हेकी नु फिरिथ कांह ॥ ६४ ॥

त्वं कथं सिकता-रञ्जु-निर्माणे निरतो नर !  
 नातस्ते जीवनस्पेक्षं नौका पारं गमिष्यति ।  
 ललाटे कर्मरेखां यामवान्नारायणः स्वयम्,  
 न सा साधनशून्यस्य लोपं यास्यति दुर्जया ॥ ६४ ॥

हे मनुष्य ! तू क्यों रेत की रस्ती बनाता (बटता) है ? इससे, रे भले मानस ! तेरी जीवन-नैया पार नहीं लग सकती । नारायण ने तेरी जो कर्म (भाग्य)-रेखा खींची है, वह कभी फिर (बदल) नहीं सकती ॥ ६४ ॥

अंदरी आयस ज्वंदरुय गारान,  
 गारान आयस हिह्यन हिह्य ।  
 जुय ह्य नारान, जुय ह्य नारान,  
 जुय ह्य नारान, यिम कम विह्य ॥ ६५ ॥

चन्द्रमन्वेष्टमाणाऽहमन्तस्तो बहिरागता,  
 बहिरन्तर्न भेदोऽस्ति, त्वं नारायण ! दृश्यसे ।  
 सर्वत्र दर्शनं विष्णोः, सर्वगस्त्वं निरीक्ष्यसे,  
 नारायण ! विचित्रेयं लीलादेवी विराजते ॥ ६५ ॥

(ध्यान-योग में स्थित होकर) मैं अन्दर से (सब को प्रकाशित करनेवाले) चन्द्र को ढूँढते-ढूँढते बाहर आ गई । (अर्थात् अंतर्जगत् से बहिर्जगत् में आ गई) । (इस प्रक्रिया में) मैंने भीतर-बाहर दोनों को एक-जैसा पाया । दरअसल, हे नारायण ! तू ही सर्वत्र दिखता है मुझको ! हे नारायण ! तेरी यह अद्भुत लीला कैसी विचित्र है ! ॥ ६५ ॥



अकुय ओमकार यस नाबि दरे,  
कुम्बुय ब्रह्मांडस सुम गरे ।  
अख सुय मंथुर ज्यतस करे,  
तस सास मंथुर क्याह करे ॥ ६६ ॥

आ ब्रह्माण्डं नाभितो येन नित्य-

मोकाराख्यो मन्त्र एको धृतोऽयम् ।

कृत्वा चित्तं तद्विमर्शकसारं

किं तस्यान्यैर्मन्त्रवृन्दैर्विधेयम् ॥ ६६ ॥\*

जो मात्र ऊँकार को नाभिस्थान में (ध्यानपूर्वक) धारण कर ले तथा कुम्भक (प्राणायाम की एक अवस्था) से उसे ब्रह्माण्ड तक पहुँचा दे और केवल इसी एक मंत्र (यानी ऊँ के जाप) को याद कर ले, उसे अन्य सहस्र मंत्रों (को याद करने) की क्या आवश्यकता है ? ॥ ६६ ॥

अछ्यन आय तु गछुन गछे,  
पकुन गछे खन क्यो राथ ।  
योरय आय तु तूरय गछुन गछे,  
कैह नतु कैह नतु कैह नतु क्याह ॥ ६७ ॥

जराऽऽगता क्षीणतरोऽद्य देहो

जातोऽवसायो गमनाय कार्यं ।

समागताः स्मो यत एव तत्र

गन्तव्यमेवेह दृढं न किञ्चित् ॥ ६७ ॥\*

(अनादि काल से) अविच्छिन्न गति से हम (इस संसार में) आते रहे और (यहाँ से) जाते रहे । (आवागमन का) यह चक्र दिन-रात चलता रहा है और चलता ही रहेगा । (रे मनुष्य ! ) तू अब यह प्रयत्न कर कि जहाँ से तू आया है, वहीं चला जा । (वहाँ से मुड़कर न आ) । (आवागमन के इस चक्र से) तुझे कुछ-न-कुछ सीख ले लेनी चाहिए ॥ ६७ ॥

शिव गुर ताय कीशव पलुनस,  
ब्रह्मा पायद्यन वोलुस्यस ।  
यूगी यूगु कलि परज्जान्यस,  
कुस दीव अश्वु वारु प्यठ चड्यस ॥ ६८ ॥

शिवोऽश्वः केशवस्तस्य पर्याणमात्मभूस्तथा ।

पादयन्त्रं तत्र योग्यः सादी क इति मे वद ॥ ६८ ॥\*

शिव घोड़ा है और केशव काठी तथा ब्रह्मा पायदान की शोभा बढ़ा रहा है । केवल योगी योग-बल से पहचान सकता है कि कौन-सा देव इस अश्व पर चढ़कर सवारी कर सकता है ! ॥ ६८ ॥

अनाहत्य ख सौरुफ शुन्यालय,  
यस नाव नु वरुन नु गुथुर तु रुफ ।  
अहम विमरशि नादु बिन्दुय यस वोन,  
सुय दीव अश्वु वारु प्यठ चड्यस ॥ ६९ ॥

अनाहतः खस्वरूपः शून्यस्थो विगतामयः ।

अनामरूपवर्णोऽजो नादबिन्द्वात्मकोऽस्ति सः ॥ ६९ ॥\*

अनाहत-ओहम् जिसकी ध्वनि है, शून्य जिसका स्वरूप है (अर्थात् शून्यालय जिसका वास है), जिसका न नाम, न वर्ण, न गोत्र और न रूप है । आत्म-विमर्श से जिसे नाद-बिन्दु आदि का ज्ञान है, वही देवता (योगशक्ति वाला शहसवार) निर्गुण रूपी घोड़े पर चढ़कर सवारी कर सकता है ॥ ६९ ॥



अब्बास्य सविकास्य लयि वौथू,  
गगनस सगुन म्यूल समि अटा ।  
शून्य गौल अनामय मौतू,  
योहय वौपदीश छुय बटा ॥ ७० ॥

अभ्यासेन लयं नीते दृश्ये शून्यत्वमागते ।  
साक्षिरूपं शिष्यते तच्छान्ते शून्येऽप्यनामयम् ॥ ७० ॥\*

अभ्यास अर्थात् योगाभ्यास द्वारा जब विस्तार-विकास का लयीकरण हो जाता है यानी बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् एक हो जाते हैं, तब सगुण (ब्रह्माण्ड) और गगन (शून्य, निर्गुण) एक दिखने लग जाते हैं तथा शून्य भी नाम-शेष हो जाता है। बचा रहता है मात्र अनामय (रोग, शोक, उपाधि विहीन) शिव तत्त्व। हे पंडित! यही एक उपदेश है ॥ ७० ॥

आमि पनु सोदरस नावि छस लमान,  
कति बोझि दय म्योन में ति दियि तार ।  
आम्यन टाक्यन पोन्ग जन शमान,  
जुव छुम ब्रमान गरु गछुहा ॥ ७१ ॥

निस्सार-सूत्रेण विकर्षयन्ती, नावं स्वकीयां भवसागरादहम् ।  
परं न जाने हि निभालयेत् कदा, पारं परं प्रापयति हृदीश्वरः ।  
नो चेद् वृथा मे श्रम एव, नीरं यथाऽविपक्वेहिशरावपात्रे ।  
तथापि भन्तुं प्रिय-सद्य सत्वरं सुविह्वला तत्र कदानु प्राप्नुयाम् ॥ ७१ ॥

कच्चे धागे से मैं अपनी नैया को भवसागर से खींचकर ले जा रही हूँ। जाने कब मेरे देव (ईश्वर) मेरी सुनैंगे और मुझे पार लगाएंगे। (मेरा यह परिश्रम वृथा जा रहा है) वैसे ही जैसे कच्चे मिट्टी के सकोरों में पानी टिकता नहीं है बल्कि सोख जाता है। मगर, इतना सब होते हुए भी मेरा जी मचल रहा है कि अपने घर (परमधाम) को चली जाऊँ ॥ ७१ ॥

ओमकार येलि लयि औनुम,  
बुह्यय क्रौरुम पनुन पान ।  
शैवोत त्राविथ सथ मारुग रौटुम,  
तैलि लल बो वाञ्जुस प्रकाशस्थान ॥ ७२ ॥

ओङ्कारमात्ससात्कर्तुं कार्यं प्रेमाग्निनाऽवहम् ।  
अतीत्य योगषण्मार्गान्, सप्तमं मार्गमास्थिता ।  
लल्लाहं तदा प्राप्ता, प्रकाश-स्थानमुत्तमम् ।  
दुर्लभं लब्धसमाभिः कथञ्चित्शाश्वतं पदम् ॥ ७२ ॥

ओङ्कार को अपने में लय करने के लिए मुझे अपनी काया की (प्रेमाग्नि में) तपाना पड़ा। (योग के) छः मार्ग पार कर सातवाँ मार्ग (सहस्रार) पकड़ा और तब कहीं जाकर मैं 'लल' प्रकाश-स्थान तक पहुँच सकी ॥ ७२ ॥

ग्यानु मारुग छय हाकुवार,  
दिज्यस शमु दमु क्रैयि पांन्य ।  
लामा जंकरु पोश क्रैयि दार,  
ख्यनु ख्यनु मौञ्जी वारुय छैन्य ॥ ७३ ॥

बोधस्य वाटिकां सिञ्च, शम-सत्कर्मवारिणा ।  
पूर्वाजित कर्मभारोऽयं नश्येद् बलिपशुर्यथा ।  
अन्यथा नाशयेदस्या, वाटिकाया मनोज्ञताम् ।  
स एव पशुरागत्य शीघ्रं कार्या विचारणा ॥ ७३ ॥

ज्ञान-मार्ग एक शाक-वाटिका है, (रे मनुष्य! तू) इसे शम-दम और सत्कर्मों का पानी पिला। इस प्रकार तेरे पूर्व कर्मों का भार उस पशु की, बलि की तरह चुक जाएगा जो साग-पात खाकर देवी की भेंट चढ़ जाता है। अन्यथा खा-खाकर एक दिन वाटिका में कुछ भी शेष न रहेगा ॥ ७३ ॥



जरमन ज्रटिथ दितिथ पन्य पानस,  
त्युथ क्याह वव्योथ तु फलिही सोव ।  
मूडस वीपदेश गयि रीज्य दुमटस,  
कन्य दांदस गोर आपरिथ रोव ॥ ७४ ॥

चर्मणा कृतवान् रोधं, शरीरं शङ्कु-कीलितम् ।  
न लब्धं फल-माधुर्यं बीजस्य वपनं विना ।  
यथा प्रासादशिखरे स्वल्पलोष्ठस्य क्षेपणम् ।  
यथा वृषाय गुडदानं, तथा ते बोधनं वृथा ॥ ७४ ॥

✓ अपने चर्म को काटकर तूने (रे मनुष्य ! ) अपने चारों ओर शरीर में खूँटे गाड़ दिए (कठोर साधना से अपने को कष्ट पहुँचाया) पर तूने अपने भीतर ऐसा कोई बीज नहीं बोया जिससे तुझे कुछ फल मिलता । अब तुझे समझाना वैसे ही निरर्थक है जैसे गुंबज पर कंकर फेंकना या बैल को गुड़ खिलाना ॥ ७४ ॥

अंसी आस्य तु अंसी आसव;  
असी दोर कर्य पतु वत ।  
शिवस सोरि नु ज्योन तु मरुन,  
रवस सोरि नु अत गत ॥ ७५ ॥

पूर्वमास्म भविष्यामः पश्चादपि वयं सदा ।  
अनाविकालाच्चक्रमणं चर्यते न समाप्यते ।  
शिवरूपस्य जीवस्य जननं मरणं तथा ।  
तथा सूर्यस्य गमनं गगने न गमिष्यति ॥ ७५ ॥

पहले भी हम ही थे और आगे भी हम ही होंगे । हमने ही अनादि काल से दौरे किये (चक्कर काटे) । शिव का जीना-मरना कभी समाप्त न होगा और न ही सूर्य का आना-जाना समाप्त होगा ॥ ७५ ॥

जिदा नंदस ग्यानु प्रकाशस,  
यिमव ज्यून तिम जीवंत्य मौखुत ।  
विशेमिस समसारनिस पाश्यस,  
अबोध गंडाह शैत्य - शैत्य दित्य ॥ ७६ ॥

चिदानन्दो ज्ञानरूपः प्रकाशाख्यो निरामयः ।  
यैर्लब्धो देहवन्तोऽपि मुक्तास्तेऽन्येऽन्यथा स्थिताः ॥ ७६ ॥\*

जिनको चिदानंद और ज्ञान के प्रकाश की अनुभूति हो गई वे जी कर भी मुक्त हैं । (किन्तु जिनको यह अनुभूति नहीं हुई) वे अबोध (मूर्ख) संसार के विषमपाश में सो-सो गाँठों के समान उलझते जाते हैं ॥ ७६ ॥

छांडान लूछुस पान्य पानस,  
छेपिथ ग्यानस वोतुम ना कूछ ।  
लय करमस तु वाज्रुस अलथानस,  
बर्य बर्य बानु तु च्यवान नु कूह ॥ ७७ ॥

स्वात्मान्वेषणयत्नमात्रनिरता श्रान्ता ततोऽहं स्थिता  
तज्ज्ञानैकमहापदेऽतिविजने प्राणादिरोधात्ततः ।  
लब्धवानन्दसुरागृहं च तदनु दृष्ट्वात्र भाण्डान्यलं  
पूर्णान्येव तथापि तत्र विमुखः प्राप्तो जनः शोचितः ॥ ७७ ॥\*

उसे ढूँढते-ढूँढते मेरा तन-मन थक गया पर उस परम-ज्ञान को प्राप्त न कर सकी । जब मैं अपने 'स्व' में लय हो गई तब 'अलथान' अर्थात् ज्ञानरूपी मधुशाला में पहुँच गई जहाँ (मधु से) बर्तन भरे पड़े हैं पर पीता कोई नहीं है ॥ ७७ ॥



जल यमुवुन हुतुवा तुरुनावुन,  
ऊरगव मन पयरिव जरिथ ।  
काठु देनि दौद श्रमावुन,  
अनति सकौल कपटु जरिथ ॥ ७८ ॥

नीरस्तम्भो वह्निशैत्यं तथैव  
पावैस्तद्व्योमयानमशक्यम् ।

दोहो धेनोः काष्ठमय्यास्तथैव ॥७९॥  
सर्वं चैतज्जृम्भितं कैतवस्य ॥ ७८ ॥\*

बहते हुए जल को थामना, अग्नि को बुझाना, पैरों द्वारा ऊँढेंगमन (भूमि से ऊपर उठकर आकाश-मार्ग की ओर वायु में चलना), काठ की धेनु से दूध निकालना—ये सभी अन्ततः कपट-चरित हैं। (योग से चमत्कार दिखलाने वालों पर व्यंग्य) ॥ ७८ ॥

जानुहा नाडिदल मन रंतिथ,  
जंतिथ, वंतिथ, कुटिथ, कलेश ।  
जानुहा अदु अस्तु रसायन गंतिथ,  
शिव छुय कूठ तु जेन वीपदीश ॥ ७९ ॥

अज्ञास्यं वशीकतुं यदि नाडो - दलं तदा,  
नश्येत् कलेशः समर्था स्यां निर्मातुं रसायनम् ।  
दुष्करा शङ्कर प्राप्तिरिति मे निश्चिता मतिः,  
इदानीमिममुपदेशं, सावधानतया शृणु ॥ ७९ ॥

यदि मैं नाडि-दल को वश में करना जानती, यदि यह जानती कि उसे कैसे काटूं और समेटूं, तो मेरा कलेश मिट जाता और मुझे रसायन-घोटने (आत्म-ज्ञान) का अनुभव हो जाता। शिव को प्रान्त कठिन है, (रे मनुष्य ! तू) यह उपदेश सावधानी पूर्वक सुन ले ॥ ७९ ॥

जननि ज्ञायाय रुत्य तां कंती,  
कंरिथ वीदरस बहू कलेश ।  
फीरिथ द्वार बजनि वात्य तंती,  
शिव छुय कूठ तय जेन वीपदेश ॥ ८० ॥

प्रसूदरं कलेशयुतं विधाय  
जातो मलाक्तोऽप्यनुयाति सन्ततम् ।

यत्प्रेरितः सौख्यधिया नरः स्त्रियं  
कठंतेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ८० ॥\*

जननी से तू भला-चंगा जन्मा यद्यपि (तूने) उसके उदर (गर्भ) को बहुत कलेश पहुँचाया। (वयस्क होने पर) तू फिर उसी द्वार की प्रतीक्षा करने लगा (कैसी विडंबना है ! ) शिव को पाना कठिन है, (रे मनुष्य ! तू) यह उपदेश सावधानी पूर्वक सुन ले ॥ ८० ॥

तंथुर गलि तांय मंथुर मौजे,  
मंथुर गोल तांय मौतुय ज्यथ ।  
ज्यथ गोल तांय कैह ति ना कुने,  
शून्यस शून्या मौलिथ गव ॥ ८१ ॥

तन्त्रं सर्वं लीयते मन्त्र एव  
मन्त्रश्चित्ते लीयते नादमूलः ।  
चित्ते लीने लीयते सर्वमेव  
दृश्यं द्रष्टा शिष्यते चित्स्वरूपः ॥ ८१ ॥\*

तंत्र (शास्त्र सम्मत तत्त्वांकन) निष्क्रिय सिद्ध हुआ तो मन्त्र (जप-तपःयोगादि) सामने आया। मन्त्र भी गला (निष्क्रिय सिद्ध हुआ) जो मात्र चित्त (चिन्मय तत्त्व) शेष रहा। चित्त भी जब सिट गया तो कहीं कुछ भी न रहा—शून्य के साथ शून्य मिल गया ॥ ८१ ॥



दमादम कौरमस दमन हाले,  
प्रज्जल्योम दीप तु ननेयम ज्ञाय ।  
अंदर्युम प्रकाश न्यबर छोटुम,  
गटि रोटुम तु करमस थफ ॥ ८२ ॥

ततः प्राणाविरोधेन  
प्रज्ज्वालय ज्ञानदीपिकाम् ।  
स्फुटं दृष्टो मया तत्र  
चित्स्वरूपो निरामयः ॥ ८२ ॥\*

(कुंभक द्वारा) मैं प्रतिपल दम (प्राण वायु) का निरोध करता  
रही । इस (अभ्यास) से मेरे अन्तर में ज्ञान रूपी दीप प्रज्ज्वलि  
हुआ और मुझे अपनी असली जात (स्थिति) का पता चल गया (साध ले),  
तब अन्तर्प्रकाश को बाहर फैला दिया और उस (प्रकाश में प्राप्त) सोना हासिल होगा ।  
सत्य) को मैंने दृढ़ता से धाम लिया ॥ ८२ ॥

द्वादशांतु मंडल यस दीवस यजि,  
नासिकु पवनुर्दार्य अनाहतु रव ।  
सौयम कलपन अनति त्रजि,  
पानय सु दीव तु अरज्जुन कस ॥ ८३ ॥

यो द्वादशान्ते स्वयमेव कल्पिते  
सदोदिते देवगृहे स्वयं स्थितः ।  
संप्रेरयन् प्राणरवि स शंकरो  
यस्यात्मभूतः स कमर्चयेद् बुधः ॥ ८३ ॥\*

जिसने द्वादशमण्डल (ब्रह्मरंध्र) को देवस्थान मान लिया हो  
जिसने नासिक्य-पवन (प्राणायाम) से अनाहत स्वरूप को अनुभूत का  
लिया हो, जिसके मन की सारी कल्पनाएँ (सांसारिक इच्छाएँ) धुँ  
हो गई हों—वही तो देव है फिर भला वह किसका अर्चन करे ! ॥ ८३ ॥

दमन बसति दितो दम,  
तिथय यिथु दमन खार ।  
शंसतुरस सौन गछी हासिल,  
वुनि छय सुल तु छांडुन यार ॥ ८४ ॥

लौहकारेण तुल्यस्त्वं  
धम प्राणान् स्वभस्त्रया ।  
लोहे स्वर्णोपलाब्धिस्स्यात्  
समयेऽभीष्टं विवेचय ॥ ८४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अपनी धौंकनी (फुंकनी) में हवा भर ले (योग  
साध ले), वैसे ही जैसे लुहार फुंकता है । ऐसा करने से लोहे में  
(तुझे) सोना हासिल होगा । अभी समय है, तू अपने इष्ट (यार) को  
ढूँढ ले ॥ ८४ ॥

प्राण तु रुहुन कुनुय जोनुम,  
प्राण बंजिथ लबि नु साद ।  
प्राण बंजिथ केह ति नो खेजे ।  
तवय लोबुम सूहम साद ॥ ८५ ॥

प्राणापानसमानादी-  
नैक्ये सम्यगवेदिषम् ।

तान्निरुध्यापरोनापि  
सोऽहं-स्वाद मवाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

मैंने प्राण और रुहन अर्थात् अपान, समान आदि को एक ही  
जाना । इन प्राणों के रहस्य को जानकर विधिपूर्वक उनका निरोध  
करने पर दूसरे मनुष्य भी क्यों न सोऽहम् रूपी स्वाद (आनंद) को  
प्राप्त करें ? ॥ ८५ ॥



पवन पूरिथ युस अनि वगि,  
तस बौ ना सुपरशि न बौछि तु वेश ।  
ति यस करुन अंति तगि,  
समसारस सुय जैयि नेछ ॥ ८६ ॥

यः पूरकेण चित्तं स्वं  
रोधयेत्क्षुत्तृडादिकम् ।

न पीडयति संसारे  
सफलं चास्य जीवितम् ॥ ८६ ॥\*

जो पवन को पूरक (भीतर-बाहर खींचकर अर्थात् प्राणायाम) द्वारा नियंत्रित करे, उसको न भूख स्पर्श कर सकती है और न प्यास । जो अंत तक यह विधि अपनाये संसार में उसी का जीना सार्थक है ॥ ८६ ॥

यि क्याह आसिथ यि कुस रंग गोम,  
 संग गोम ज्रंथिथ हुदहुदने दिगे ।  
 सारैन्थ पदन कुनुय वखुन प्योम,  
 ललि मै त्राग गोम लगु कमि शाठ्य ॥ ८७ ॥

कीदृगासीत् शरीरं मे, साम्प्रतं कीदृशं गतम् ।  
 प्रस्तरप्राय-हृदयं, कृन्तं हृद-हृद-पक्षिणा ।  
 तदा सम्पूर्णशास्त्रस्य, सार-सूत्रं समागतम् ।  
 त्वैलान्तराले निमिन्तो, वहन्माऽमृतनिर्झरः ॥ ८७ ॥

(स्वात्म-बोध में) मेरे शरीर के रंग का हाल क्या से क्या हो गया ! (आत्म-चितनरूपी) हृद-हृद (पक्षी-विशेष) की ठूंगों ने संग (पत्थर) जैसे मेरे हृदय को काट डाला । सभी पदों (वेद-शास्त्रादि) का सार एक ही सूत्र में सामने आ गया और मुक्त लल के भीतर अमृत का सोता फूट पड़ा । अब सोच रही हूँ कि उसमें कहीं बह न जाऊँ ॥ ८७-॥

यिमय शौ जै तिमय शौ में,  
 ष्यामु गला जै व्यन ताटुस ।  
 यौहोय व्यन अंबीद जै तु में,  
 जु ष्यन सांमी बो शौयि मुशुस ॥ ८८ ॥

यदेव षट्कं ते देव  
तदेव च मम प्रभो ।

नियोक्ता त्वं नियोज्याहं  
तस्यास्तीत्यावयोभिदा ॥ ८८ ॥\*

हे श्यामगला (नीलकंठ) ! जिन छः (उपाधियों) से आप युक्त हैं, उन्हीं छः (उपाधियों) से मैं भी युक्त हूँ। बस, आपमें और मुझ में यदि कोई भेद है तो वह यह है कि आप छः के स्वामी हैं और मेरे छः लूट गए हैं। [यहाँ पर छः उपाधियों से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर अथवा पंचेन्द्रियाँ व मन से है] ॥ ८८ ॥

नाबिस्थानु छय प्रकरथ जलुवुनी,  
हिडिस ताम येती प्रान वतुगोत ।  
ब्रह्मांडस प्यठु छय नंद्य वहवुनी,  
हह तवु तुरुन तु हाहा तवु तोत ॥ ८९ ॥

नाभ्युत्थितो हाः जठराग्नितप्तो  
हः द्वादशान्ताच्छिरात्समुत्थः ।

हाः प्राणभूतोऽस्त्यथ हूः अपानः  
सिद्धान्त एवं मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ८६ ॥

नाभिस्थान की प्रकृति में (जठराग्नि) जलती रहती है और वहीं से कंठ तक प्राण-वायु ऊपर आती है। ब्रह्मांड (शीर्षस्थल) में प्राणापान रूपी नदी प्रवाहमान है, इसीलिए हह ठंडा और हा-हा गर्म है ॥ ८९ ॥



शे वन ज्रटिथ शेशि कल वुजुम,  
प्रकरथ होंजुम पवुनु सूती ।  
लोलुकि नारु वॉलिज बुजुम,  
शंकर लोंबुम तमी सूती ॥ ९० ॥

कामादिकं काननषट्कमेत-  
च्छित्त्वामृतं बोधमयं मयाप्तम् ।

प्राणाविरोधात् प्रकृतिं च भक्त्या  
मनश्च दग्ध्वा शिवधाम लब्धम् ॥ ९० ॥\*

छः वन (शक्ति के छः चक्र) लांघकर मैंने शशिकला को जगाया  
(अर्थात् सांसारिक बन्धनों को जब मैंने योगादि क्रियाओं से वश में  
कर लिया तब उस चन्द्रकला तक पहुँची जो परम-शिव का स्थान है)  
इसके लिए मुझे पवन (प्राणायाम) द्वारा अपनी प्रकृति को सुखाना  
पड़ा और प्रेमान्ति (देवानुराग) से अपने कलेजे को भूनना पड़ा ।  
तब कहीं जाकर मैं अपने शंकर को पा सकी ॥ ९० ॥

शील तु मान छुय पोन्थ क्रेजे,  
मोछि येम्य रोट मंल्य योद वाव ।  
होंस युस मसवाल् गंडे,  
ती यस तगि तांय सु अद् निहाल ॥ ९१ ॥

शीलस्य मानस्य च रक्षणं भटै-  
स्तरेव शक्यं निपुणं विधातुम् ।

वायुं करेणाय गजं च तन्तुना  
यैः शक्यते स्तम्भयितुं सुधीरैः ॥ ९१ ॥\*

(रे मनुष्य ! सत्य-अन्वेषण के समक्ष) शील और मान का विचार  
टोकरी में जल भरने के समान (व्यर्थ) है । हाँ, जो वायु को मुट्ठी में  
कर सके तथा हाथी को एक बाल से बाँध सके—जिसे यह करना आये, वह  
अवश्य निहाल (आत्मज्ञान से समृद्ध) हो जाएगा ॥ ९१ ॥

समसरस आयस तपसुय,  
बौदि प्रकाश लोंबुम संहजु ।  
मंर्यम नु कुंह मरु नु कांसि,  
मरु नेछ तु लसु नेछ ॥ ९२ ॥

आसाद्य संसारमहं वराकी  
प्राप्ता विशुद्धं सहजं प्रबोधम् ।

अत्रिये न कस्यापि न कोऽपि मे वा  
मृतामृते मां प्रति तुल्यरूपे ॥ ९२ ॥\*

संसार में मैं तप करने को आई और बुद्धि-प्रकाश से सहज  
(स्वात्म-बोध) को पा लिया । (देशकाल, माया-मोह आदि के बंधनों से  
मैं मुक्त हो चुकी) न मेरा कोई मरेगा और न मैं ही किसी के लिए मरूंगी ।  
(स्थिति ऐसी हो गई है कि) मरुं तो वाह ! जीवित रहूँ तो वाह !  
(स्वात्म-बोध जीवन और मृत्यु की सीमाओं से परे है) ॥ ९२ ॥

संजसस नु सातस पंजसस नु रुमस,  
सौमस मे ललि पननुय वाख ।  
अंदर्युम गटुकार रंठिथ तु वौलुम,  
ज्रटिथ तु छुतमस तती चाख ॥ ९३ ॥

बालाग्रं सूचिकाग्रं वा  
नाहं पश्चाद्वर्तिनी ।  
अन्तस्तमो गृहीतं तन् ।  
मया दीर्णं क्षणान्तरे ॥ ९३ ॥

सूई के नोक व बाल जितना भी मैं कभी (परमात्म-प्राप्ति के  
लिए) पीछे न रही । मैंने अपने अन्दर के अन्धकार को पकड़ लिया  
और पकड़कर उसे चाक कर डाला । (अर्थात् तन्मय होकर मैंने  
अपने भीतर अज्ञान रूपी अंधकार को समाप्त कर डाला) ॥ ९३ ॥



सहजस शम तु दम नो गछे,  
येछि नो प्रावख मुख्ती द्वार ।  
सलिलस लवन जन मीलित्य गछे,  
(तोति छुय दौरलब सहजु व्यञ्जार ॥ ९४ ॥

स्वभावलब्धौ न शमोऽस्ति कारणं

तथा दमः किं परं विवेकः ।

नोरंकरूपं लवणं यथा भवेत्-

तथैकताप्तावपि नैष लभ्यः ॥ ९४ ॥\*

सहज (आत्मबोध) शम और दम से प्राप्त नहीं होता और न ही मात्र इच्छा से मुक्ति-द्वार को पाया जा सकता है। सलिल में लवण घुल भी जाए तो भी सहज-विचार दुर्लभ है। (अर्थात् जीव और परमात्मा के तादात्म्य से तब तक कोई लाभ नहीं है जब तक कि सर्वशक्तिमान परम ब्रह्म का जीव पर अनुग्रह न हो) ॥ ९४ ॥

अयु मवा तावुन खरवा,  
लूकु हुंज कौगुवार खेयी ।  
तति कुस बा दारी थर बा,  
येति ननिस करतल पेयी ॥ ९५ ॥

गर्दभोऽयं

खादेत्

त्वयि

करवालः

वशीकार्यः,

केसर-वाटिकाम् ।

दण्डस्वरूपेण,

पतिस्यति ॥ ९५ ॥

(रे मनुष्य ! ) अपने हाथ से इस (मन रूपी) गधे को न जमाने दे। (इसे वश में रख) यह (मूर्ख) लोगों की केसरवाटिका खा जाएगा और फिर तुझे दण्डस्वरूप तलवार की मार सहनी पड़ेगी ॥ ९५ ॥

गाफिलो हुकु कदम तुल,  
वुनि छय सुल छांडुन यार ।  
पर कर प्रादा परवाज तुल,  
वुनि छय सुल तु छांडुन यार ॥ ९६ ॥

त्वरस्व

शेषः

मागंयस्व

मुद्दीनं

चरण-न्यासे

कालोऽयमल्पकः ।

सखायं

स्व-

कुच

पक्षिवत् ॥ ९६ ॥

रे गाफिल ! तू तेज कदमों से चल । अभी भी समय है, अपने यार को ढूँढ । तू पेंख पेंदा कर और परवाज कर । अभी भी समय है, अपने यार को ढूँढ ॥ ९६ ॥

गाल गंङ्गन्यम बोल पंड्यन्यम,  
दंध्यन्यम ती यस यि रुञ्जे ।  
सहजु कुसमव पूज कर्यन्यम,  
बो अमूलान्य तु कस क्याह मुञ्जे ॥ ९७ ॥

तिन्दन्तु वा मामथ वा स्तुवन्तु

कुर्वन्तु वाचां विविधैः सुपुष्पैः ।

न हर्षमायाम्यथ वा विषादं

विशुद्धबोधामृतपानस्वस्था

॥ ९७ ॥

चाहे कोई मुझे गाली दे या बुरा-भला कहे । जिसे जो रुचे, मुझे कहे । चाहे तो कोई मेरी सहज कुसुमों से पूजा करे । मगर इस सब का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि मैं अमलिन हूँ ॥ ९७ ॥



अथ नौवुय जंदुरमु नौवुय,  
जलमय ड्यूठुम नवम नौवुय ।  
यनु प्यठु ललि में तन मन नौवुय,  
तनु लल बो नवम नवुय छस ॥ ९८ ॥

शरीरमन्तः परिमार्जितं यदा,  
लल्लापि नव्या नवमेवसर्वम् ।

अन्तर्गतां जलमयीं प्रकृतिं च चित्तं,

चन्द्रं च चारुकिरणं गगने व्यपश्यम् ॥ ९८ ॥

चित्त नया और चन्द्रमा भी नया । भीतर की जलमय प्रकृति  
को भी नित्य नया ही देखा । जब से 'लल' ने तन-मन को माँज  
तब से लल भी नयी की नयी ॥ ९८ ॥

अथ अमरपथि रथ्यजि,  
ति नौवुय लगिय जुड्य ।  
तति जु नो शीक्यजि सन्दार्यजि,  
दौदु शुर्य तु कौछि नो मुड्य ॥ ९९ ॥

योजय मनोऽमरपथे कुपथं न गच्छेत्

शीघ्रं विधेहि स्ववशे न विभेहि किञ्चित्

मातुर्जहाति न हठी शिशुरङ्गमेत्य ।

तद्वन्मनो भवति निग्रह-प्रस्थि-हीनम् ॥ ९९ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अपने चित्त को अमर-पथ पर लगा दे । यदि  
उसे खुला छोड़ देगा तो फिर पुनः (अमर पथ से) जुड़ेगा नहीं ।  
उसको वश में करने से तू जरा भी संकोच न कर क्योंकि वह एक  
(हठी) शिशु है जो (दूध पीने पर भी माँ की) गोद से उतरने का  
नाम नहीं लेगा ॥ ९९ ॥

मनस सूर्य मनुय गोंडुम,  
अथतस रंटुम ज़ोपार्य वग ।  
प्रक्रुज सुतिय पोरुश वोलुम,  
सर में कोरुम लंबुम वथ ॥ १०० ॥

मनोहि बद्धं मनसा सहैव  
कविका गृहीता चल-चित्त-वाजिनः ।

आवेष्ट्य सम्यक् पुरुषं प्रकृत्या

विचारणाय लब्धः सुमार्गः ॥ १०० ॥

मैंने मन को मन के साथ बाँध लिया और चित्त की लगाम चारों  
ओर से पकड़ ली । पुरुष को प्रकृति से आवेष्टित कर लिया तब मुझे  
चित्तन का मार्ग प्राप्त हुआ ॥ १०० ॥

अलु अयता वौदस वयि मोबर,  
चोन ज़िथ करान पानु अनाद ।  
जै को जनुन्य ख्यौद हरि कर,  
कीवल तसुंदुय तारुक नाद ॥ १०१ ॥

रे चित्त ! चिन्तां न विधेहि स्वस्मिन्

चिन्तां त्वदीयां कुरुते महेश्वरः ।

ज्ञानं न ते शं स कदा विधास्यति

त्वं केवलं नाम गृहाण तस्य ॥ १०१ ॥

रे चंचल चित्त ! तू हृदय में भय को न भर (ला) । तेरी  
चिन्ता तो स्वयं अनादि कर रहे हैं । तुझे क्या मालूम कि कब वे तेरी  
क्षुधा (इच्छा) पूरी करेंगे । तू तो केवल उसके नाद (नाम) का जाप  
करता जा ॥ १०१ ॥



ज्यत् तौरंग गगनं ब्रमुवोन,  
नमीशि अकि छंडि यूजनु लछ ।  
जेतनि वगि बोदि रटिथ जोन;  
प्राण अपान संदारिथ पखुच ॥ १०२ ॥

चित्ताभिधः सर्वगतिस्तुरङ्गः  
क्षणान्तरे योजनलक्षगामी ।  
धार्यो बुधेन्द्रेण विवेकवल्गा-  
नोदेन वायुद्वयपक्षरोधात् ॥ १०२ ॥\*

चित्त-रूपी तुरंग गगन में भ्रमण करने का आदी है (ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ व इच्छाएँ करता है) तथा एक निमिष में लाखों योजन पटक-पटक कर धोया। फिर दर्जी ने मेरे अंग-अंग में कैंची फिराई घूम आता है। जिसने बुद्धि और चेतनता (विवेक) रूपी लगाम से उसको वश में करना सीख लिया वही प्राण-अपान के चक्रद्वय को नियंत्रित करने में सफल होता है ॥ १०२ ॥

ज्यत् तौरंग वगि ह्यथ रोटुम,  
जेलिथ मिलुविथ दशि नाडि वाव ।  
तवय शशिकल व्यगुलिथ वंछुम,  
शून्य शून्याह मील्लिथ गव ॥ १०३ ॥

नियन्त्रितः खलीनेन मया चित्त-तुरङ्गमः ।  
बद्धो नाडिकायुक्त श्वास-प्रश्वास-रज्जुभिः ।  
तदा शशिकला सम्यक्जाता पीयूषवर्षिणी ।  
एवं शून्येऽमिलच्छून्यमभेदो जीव-ब्रह्मणोः ॥ १०३ ॥

मैंने चित्तरूपी तुरंग को लगाम देकर थाम लिया। फिर दशनाड़ियों के श्वासोच्छ्वास के साथ उसको बाँध दिया। तब कहीं शशिकला पिघली और शून्य में शून्य मिल गया ॥ १०३ ॥

दौब्य येलि छावनस दौब्य कनि प्यठुय,  
सज तु सावन मंछनम यंजुय ।  
सुज्य येलि फिरनम हनि हनि कांजुय,  
अदु ललि मे प्रावुम परमु गथ ॥ १०४ ॥

पूर्व फेनिल-मेलनेनरजको मां प्रस्तरेऽपोथयत् ।  
परचात् सौजिक-कर्तरी-कृतसिता गात्रेऽवहं समभवम् ।  
एवं साधनशोधिता तनुरभूद् योग्या प्रियस्यार्पणे ।  
धन्याऽहं निजजीवने दुर्लभां प्राप्तातु परमां गतिम् ॥ १०४ ॥

(पहले) खूब साबुन और सोडा मलकर धोबी ने मुझे पत्थर पर धोया। फिर दर्जी ने मेरे अंग-अंग में कैंची फिराई

पोत जूनि वंथिथ मोत बोलुनोवुम,  
दग ललुनावुम दयि सुंजि प्रहे ।  
लल्य लल्य करान लालु वुजुनोवुम,  
मीलिथ तस मन श्रोज्योम दहे ॥ १०५ ॥

प्रातः प्रबुद्धा हि व्यबोधयं स्वं  
परमार्थ-मार्गे चलमन्तरङ्गम् ।  
ततः प्रियं श्रावित-लल्लनाम्ना  
प्राबोधयं धन्यतमा हि जाता ॥ १०५ ॥

(नित्य) रात्रि के अंतिम पहर में जागकर मैंने इस चंचल मन को बहुत समझा-बुझाकर परमार्थ की ओर प्रवृत्त किया। इस प्रक्रिया में मुझे अपार पीड़ादि सहनी पड़ी। 'मैं लल हूँ', 'मैं लल हूँ' कहकर मैंने अपने लाल (प्रिय इष्ट) को जगाया और फिर उससे मिलकर मेरी यह देह पवित्र हो गई ॥ १०५ ॥



मनसाय मन बवसरस,  
छोर कूप नेरस नारुक छुख ।  
लैका लैख यौद तुल कौटि,  
तुलि तूखु तु तुल ना केह ॥ १०६ ॥

मन एव मनुष्याणां भवसागर उच्यते ।  
वेला-विहीनादस्मात्तु दुर्वचोवडवानलः ।  
निर्गतो ज्वलन-ज्वालासंघात मुद्वमिष्यति ।  
तदा त्वं कृतयत्नोऽपि गणनाकरणेऽक्षमः ॥ १०६ ॥

(रे मनुष्य ! तेरा यह) मन एक भव-सागर है । यदि इसे खुला छोड़ देगा (बाँधेगा नहीं) तो इसमें से गाली-गलौज (ईर्ष्या, द्वेष, वैर आदि) रूपी बड़वानल के फव्वारे छूटेंगे जिन्हें तू तोलना भी चाहे तो नहीं तोल सकता ॥ १०६ ॥

कामस सुतिय प्रय नो बरुम;  
कूदस द्युतुम पवनुन फेश ।  
लूबस मूहस ज़रन चटिम,  
तशना ज़जिम गंयस खोश ॥ १०७ ॥

कामं न कामये किञ्चित् क्रोधाग्निनिर्वापिता ।  
लोभस्य दुष्टमोहस्य चरणौ शातितौ मया ॥ १०७ ॥ क  
एतावति कृते यत्ने तृष्णा निर्गता मम ।  
तदाऽहं सर्वभावेन जीवने मुदिताऽभवम् ॥ १०७ ॥ ख

मैंने काम के साथ प्रीति नहीं रखी, क्रोध को पवन से बुझा दिया, लोभ और मोह के चरण काट डाले तब मेरी तृष्णा मिट गई और मैं खुश हो गई ॥ १०७ ॥

यैम्य लूब मनमथ मद ज़ूर मोरुन,  
वति नाश्य मारिथ ति लोगुन दास ।  
तमी सहजु ईश्वर गोरुन,  
तमी सोरुय व्यौदुन स्वास ॥ १०८ ॥

यो मारयित्वा मद-लोभ-कामान्  
अभिमानशून्यः प्रभु-दास एव ।  
प्राप्तिस्तदाऽभूत् सहजेश्वरस्य  
भूतिर्भवेद् भस्म-समानमेव ॥ १०८ ॥

जिसने लोभ, मन्मथ (काम) और मद रूपी चोरों को मारकर उन्हें अपने रास्ते से हटा दिया तथा इतना-कुछ करने पर भी दास (निराभिमानी) बना रहा, उसने सहज-ईश्वर को पा लिया और फिर उसकी दृष्टि में सांसारिक सुख-वैभव राख समान हैं ॥ १०८ ॥

ललित्य ललित्य वदय बी वाय,  
ज्रेता मुठुच पेयी माय ।  
रोजी नो पत् लोह लंगरुच छाय,  
निजु स्वरुप क्याह मौठुय हाय ॥ १०९ ॥

रे चित्त ! रुद्ध्यां त्वयि वार-वारम्  
बद्धं त्वमस्मिन् दृढ-मोह-जाले ।  
किञ्चिन्न यास्यति त्वया सह लोकवस्तु  
किं विस्मृतं निजस्वरूपमनूपरूपम् ॥ १०९ ॥

रे चित्त ! तुझपर फूट-फूट कर रोऊँ । तू (सांसारिक) मोह-मय्या में (बुरी तरह) उलझ जो गया । (तू शायद यह नहीं जानता कि अंतकाल में) यह लोह-लंगर (भौतिक सुख-वैभव) की छाया तक तेरा साथ न देगी । हा ! तू निज स्वरूप को क्यों भुला बैठा ? ॥ १०९ ॥



लूब . मारुन संहजु व्यञ्जारुन,  
द्रौंग जानुन कलपन ज्ञाव ।  
निशि छुय तु दूर मो गारुन,  
शून्यस शून्या मीलित गव ॥ ११० ॥

लोभं त्यक्त्वा वैमनस्यं च तद्वत्-  
कार्यो नित्यं स्वस्वभावावमर्शः ।

शून्याच्छून्यं तैव भिन्नं यथैवं १३५  
तस्मात्त्वं तद्भेदबुद्धिर्बुधैव ॥११०॥\*

(रे मनुष्य ! ) तू लोभ को मार (त्याग) दे और सहज (स्वात्म) का विचार कर । (उस परम-ब्रह्म को प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं है) अपितु उसे एक महंगा सौदा जान । इसलिए कल्पनाएँ करना छोड़ दे । वह तो तेरे निकट है, उसे अपने से दूर न डूँड । वह शून्य के साथ मिल जाने के समान है ॥ ११० ॥

बुधि क्या जान छुख वौदु छुय कन्य,  
 असलुच कथ जाँह सनिय नो ।  
 परान लेखान वुठ ओँगजि गजिय,  
 अंद्रिम दुय जाँह जंजी नो ॥ १११ ॥

दर्शने  
हृदयं दर्शनीयस्त्वं,  
पाषाण-सन्निभम् ।

यत्र सत्याङ्कुरो नैव, शास्त्राधीतो विभेदवृक् ॥१११॥

दिखने को तो तेरा चेहरा बड़ा सुन्दर है किन्तु हृदय पत्थर के समान है, जिसमें सत्य की बात कभी समायी नहीं। पढ़ते-लिखते तेरे होंठ व उंगलियाँ घिस तो गईं किन्तु तेरे अन्दर की दुःख-भावना) दूर नहीं हुई ॥ १११ ॥

हन्निवि हारिजि प्यञ्जिव कान गोम,  
अवख छान प्योम यथ राजदाने ।  
मंजबाश बाजरस कुलुफ-रौस वान गोम,  
तीरथ-रौस पान गोम कुस मालि जाने ॥ ११२ ॥

अहो काष्ठ-धनुस्तत्र, शरः शष्पविनिमित्तः ।  
निर्मातुं राजप्रासादं, कारुरजः समागतः ।  
यथा पण्यगृहं हट्टे यन्त्रकेण विनास्थितम् । २७४  
शरीरं मामकं तद्वद् जानीयात्को मम स्थितिम् ॥११२॥

ज (भाग्य ने मेरे साथ खिलवाड़ किया) काठ के धनुष के लिए  
 शीण मिला तो वह घास का। राजमहल के (निर्माण) लिए बड़ई चाखा  
 एमला तो वह भी मूख। मेरी स्थिति तो बीच बाज़ार में ताले रहित मिला  
 मुकान जैसी हो गई है। देह मेरी तीर्थ-विहीन ही रही। मेरी यह दुकान  
 खवशता कौन जान सकता है ! ॥ ११२ ॥ खिवशता

हा ज्यता क्व छुय लोगमुत परमस,  
 क्व गोय अपजिस पज्युक ब्रोत ।  
 नेश-बोझ वश कोरनख पर-दरमस,  
 यिन् गछन् ज्यन् मरनस क्रोत ॥ ११३ ॥

रे चित्त ! कस्मादसि मोहमग्नं  
जानासि सत्यं त्वमसत्यमेव । २४०  
परधर्ममेत्य निजधर्म-विहीन ! मूढ !  
तस्मात्पुनः पतति हा ! जन्मादि-चक्रे ॥११३॥

रे चित्त ! तू क्यों आसक्ति में पड़ा हुआ है ? क्यों झूठ में तुझे  
जब की प्रतीति होती है ? तू दुर्बुद्धि के कारण परधर्मी बन गया है  
(अपने धर्म से च्युत हो गया है) तभी तो आवागमन और जन्म-मरण  
के चक्कर में फंसा हुआ है ॥ ११३ ॥



तलु छुय ज्युस तय प्यठु छुख नजान,  
वन तु मालि क्यथ पजान छुय ।  
सोरुय सौबरिथ येति छुय मौजान,  
वन तु मालि अन क्यथु रोजान छुय ॥ ११४ ॥

निम्नस्थगतोपरि नृत्यकारिन्  
कथं हि चित्तं रमतेऽत्र संगतम् ।  
इहैव सर्वं परिहाय गच्छेः  
कथं पुनस्ते स्वशनं हि रोचते ॥ ११४ ॥

तेरे नीचे खाई है और तू उसके ऊपर नाच रहा है। भला तेरा  
मन इस स्थिति से समझौता कैसे कर रहा है? सब कुछ इकट्ठा कर  
बाद में यहीं छोड़ देना है, (इस बात को जानते हुए भी) भला तू  
अन्न कैसे रुचता है? ॥ ११४ ॥

दिल किस बागस दूर कर गासिल,  
अदु छवु फौलिय यंबुरजाल्य बाग ।  
मरिथ मंगनय वुमरि हुंज हासिल,  
मोत छुय पतु पतु तहसीलदार ॥ ११५ ॥

चित्तोद्यानाद् यथाशीघ्रं कर्तृणं कुरु दूरतः ।  
तदा हेमलतायाश्च प्रसरेत् पुष्प-सौरभम् ।  
यत्कृतं जीवने किञ्चित्, तत्कृते मरणान्तरे ।  
प्रश्नो विधास्यते सम्यक्, पश्चात्मृत्युर्गमिष्यति ॥ ११५ ॥

दिल के बाग से झाड़-झंखाड़ निकाल फेंक तब कहीं नरगिस के  
फूल उस बाग में खिलेंगे। मरने के बाद तूझसे, उम्र भर में तू ने जो  
हासिल किया है, उसका हिसाब मांगा जाएगा और मोत मानो  
तहसीलदार की तरह तेरा पीछा करेगी ॥ ११५ ॥

परान परान ज्यव ताल फजिम,  
जे युग्म क्रय तजिम न जांह ।  
सुमरन फिरान थ्योठ तु ओंगजि गज्यम,  
मनुच्य दुय मालि जजिम नु जांह ॥ ११६ ॥

अधोयाना चिरान्नाभूत, तव योग्या हि योग्यता ।  
अभूच्च सर्वथा दुःखम्, जिह्वा-तालु-विशोषणम् ।  
माला मावर्त मानाया, अङ्गुष्ठ-कर-वल्लरी ।  
छिन्ना जाता परं नैव, गता द्वैताभिभावना ॥ ११६ ॥

पढ़ते-पढ़ते मेरी जीभ और तालु फट गये मगर तेरे योग्य कर्तव्य-  
विधि मेरी समझ में न आयी। सुमरनी (माला) फेरते-फेरते मेरा  
अँगुठा और उँगलियाँ गल गईं मगर मन की दुय (द्वैताभावना) फिर  
भी दूर न हुई ॥ ११६ ॥

गौरस प्रुछाम सासि लटे,  
यस नु केह वनान तस क्या नाव ।  
प्रुछान प्रुछान थचिस तु लूसुस,  
केह नस निशि क्या ताम द्राव ॥ ११७ ॥

सहस्रशो गुरुः पृष्ठः  
किं नामाज्ञातवस्तुनः ।

मौनेनैव समाज्ञप्ता,  
सर्वं

वाचामगोचरम् ॥ ११७ ॥

गुरु से मैंने हजार बार पूछा कि जिसे 'कुछ नहीं' कहते हैं, उसका  
नाम क्या है? पूछते-पूछते मैं थक गई और मुरझा गई। (अंत में)  
मैं यही समझी कि 'कुछ नहीं' से ही कुछ न कुछ निकला है ॥ ११७ ॥



जालुन छु वुजमल तु वटय,  
जालुन छु मंदिन्यन गटुकार ।  
जालुन छु पान पनुन कडुन प्रटय,  
छुत मालि संतुश वाती पानय ॥ ११८ ॥

विद्युत्प्रहार-प्रतिमा क्षमा मता  
रवौ स्थिते नश्यति सा तमो यथा ।

आत्मार्पणं पेषण-चक्रिकान्तरे १५  
सा दुर्लभा प्राप्स्यति तुष्टि सेवनात् ॥ ११८ ॥

सहनशीलता बिजली और गाज समान, (कठोर परीक्षा व श्रम की वस्तु) है, सहनशीलता मध्यान्ह में अन्धकार के समान (असंभव बात) है। सहनशीलता अपने आपको चक्की में पीसने के समान है (रे मनुष्य ! यदि तू) संतोष से काम ले तो वह (सहनशीलता) स्वयं मिल जाएगी ॥ ११८ ॥

लतन हुंद माज लार्योम वतन,  
अकिय हावनम अकिचिय वथ ।  
यिम यिम बोजन तिम कोनु मतन;  
ललि बूज शतन कुनिय कथ ॥ ११९ ॥

अन्वेषणे मे पदमांस-लिप्तो-  
मार्गस्तथाऽहं न गता स्वलक्ष्यम् ।

एकेन पन्थाः स व्यदर्शि, मोदते,  
यस्तस्य संज्ञां शृणुयात्कदाचित् ॥ ११९ ॥ क

शतशः सारशून्येषु,  
सारमेकं मयाधृतम् ।

लल्लाऽहं न पुनश्चिन्ति,  
गमिष्यामि जगत्पथे ॥ ११९ ॥ ख

(धूमते-फिरते) मेरे तलवों का मांस सड़कों से चिपक गया अर्थात् सत्यान्वेषण के लिए मुझे खूब कष्ट उठाने पड़े। (अंत में) एक (आत्मज्ञान) ने मुझे मार्ग-दर्शन कराया। जो उस (एक) का नाम सुनोगे वे भला मतवाले क्यों न हो जाएं। लल ने सी बातों में से एक बात सार की निकाल ली ॥ ११९ ॥

द्योंठ मीधुर तय म्यूठ जहर,  
यस यूत छुनुख जतन बाव ।  
येन्थ युथ कोरय कख तु क्रहर,  
सु तथ शहर वातिथ प्यव ॥ १२० ॥

तिक्तं मधुर-तुल्यं भो ! मधुरं गरलायते ।  
येनाऽऽस्वादितं कष्टं, मधुरं सुखमाप्यते ।  
कृतमाराधनं येन, निष्ठया वृढया भृशम् ॥ ११७  
स एव सफलीभूतः स्वस्य लक्ष्यस्य प्रापणे ॥ १२० ॥

(कभी-कभी) कड़वा मीठा और मीठा जहर (समान कड़वा) होता है। (इसलिए रे मनुष्य ! ) जिसने जितना कष्ट सहा (कटुता को खिखा) और एक निष्ठा से आराधना की, वह अपने उद्देश्य (संतुष्ट) को प्राप्त करने में सफल हो गया ॥ १२० ॥

तन मन गंयस बो तस कुनुय,  
बूजुम सतंच गंटा वज्जान ।  
तथ जायि दारनायि दारन रंठम,  
आकाश तु प्रकाश कोरुम सरु ॥ १२१ ॥

मनसा कर्मणा वाचा निमग्ना ध्येय-चिन्तने । ॥ ११७  
तदेव तस्य देवस्य ध्वनिः कर्णपथंगतः ॥ १२१ ॥ क  
धारणा विधृता स्वान्ते सर्व-तत्त्व मवेदिषम् ।  
गगनात्पातालपर्यन्तं स्थितस्य जगतस्तथा ॥ १२१ ॥ ख

जब तन-मन से मैं उसके ध्यान में खो गई तो मुझे सत्य की घण्टी बजती सुनायी दी। तब मैंने अपनी धारणा (शक्ति) को धारण (आत्मसात्) कर लिया और आकाश व पाताल (सर्वस्व) का रहस्य जान गई ॥ १२१ ॥



कतु छुख दिवान अनिने बछ,  
दुख अय छुख तु अंदरिय अछ।  
शिव छुय अंत्य तय कुन मो गछ,  
सहज कथि म्यानि कर तो पछ ॥ १२२ ॥

त्वमन्धवद् भ्राम्यसि लक्ष्यहीन-  
स्तवान्तराले स्थित एव शंकरः ।

नान्यत्र लभ्यं शिव-दर्शनं त्वया  
विश्वासमातिष्ठ मदीयवाक्ये ॥ १२२ ॥

(रे मनुष्य ! तू) क्यों अन्धे की तरह इधर-उधर टटोलता (हाथ मारता) है। यदि तू बुद्धिमान है तो अन्दर की ओर उन्मुख हो जा। शिव वहीं पर हैं, अतः कहीं और न जा। मेरे इस सहज कथन पर तू विश्वास कर ॥ १२२ ॥

मूडो कय छय नु दारुन तु पारुन,  
मूडो कय छय नु रछिन्य काय।  
मूडो कय छय नु दीह संदारुन,  
सहज व्यञ्जारुन छुय वीपदीश ॥ १२३ ॥

त्वदीय-कार्यं नहि काय-मार्जनम्  
त्वदीय-कार्यं नहि काय-चिन्तना।  
त्वदीय-कार्यं नहि कायभूषणं  
त्वदीय-कार्यं सहजस्य चिन्तनम् ॥ १२३ ॥

रे मूड ! तेरा कर्तव्य सजना-सँवरना नहीं है। रे मूड ! तेरा कर्तव्य अपनी काया की चिन्ता करना नहीं है। रे मूड ! तेरा कर्तव्य अपनी देह को संभालना भी नहीं है। तेरे लिए तो सहज को विचारना ही उपदेश है ॥ १२३ ॥

लज कासी शीत न्यवारिय,  
वन जल करान आहार।  
यि कम्य वीपदीश कौरय बटा,  
अजीतन वटस सजीतन छुन आहार ॥ १२४ ॥

स्वचर्मणा रक्षति ते शरीरं  
करोति नित्यं तृण-वारि-भोजनम् ।  
परोपदेशिन् किमु हंसि चेतन-  
मचेतनस्योपरि प्रस्तरस्य ॥ १२४ ॥

यह तेरी लज्जा को ढाँकता है (खाल, चमड़े आदि के रूप में), शीत से भी तेरी रक्षा करता है (ऊन आदि के रूप में) स्वयं तो (बेचारा) तृण-जल का आहार करता है। फिर यह उपदेश, रे पंडित ! मुझे किसने दिया कि अचेतन पत्थर पर तू इस चेतन नक़रे को बलि चढ़ा ॥ १२४ ॥

दंछिनिस ओवरस जायुन जानुहा,  
सुदरस जानुहा कंडिय अठ।  
मंदिश रुगियस वैद्युत जानुहा,  
मूडस जानिम नु प्रनिथ कथा ॥ १२५ ॥

छेत्स्याम्यहं दक्षिण-जात-मेघान्  
कतु क्षमा सिन्धुजलस्य शोषणम् ।  
विमोचनं शक्यमसाध्यरोगतः  
न मूढमुद्बोधयितुं समर्था ॥ १२५ ॥

दक्षिणी मेघों को भंग (छिन्न-भिन्न) भी कर सकती हूँ, सागर से जल को भी उलीच सकती हूँ, असाध्य रोग की चिकित्सा भी कर सकती हूँ किन्तु मूढ़ को (तत्त्वार्थ) नहीं समझा सकती ॥ १२५ ॥



अव्यञ्जारी पोथ्यन छि हो मालि परान,  
यिथु तोतु करान 'राम' पंजरस ।  
गीता परान तु हीथा लवान,  
परुम गीता तु परान छस ॥ १२६ ॥

पठन्ति ग्रन्थान् शुक्वन्नरा वृथा  
तथैव गीताऽध्ययन-प्रदर्शनम् ।

ज्ञानाय गीतामहमध्यगोषि  
तथाप्यधीये न प्रदर्शनाय ॥ १२६ ॥

अविचारी पोथियों (धर्मग्रन्थों) को वैसे ही पढ़ते हैं जैसे पिंजरे में तोता 'राम-राम' रटता है। ऐसे लोगों के लिए गीता का पढ़ना मात्र एक बहाना (ढोंग है) गीता मैंने पढ़ी और पढ़ रही हूँ। (धर्मग्रन्थों के कथनों को पढ़कर उन्हें आत्मसात् करना ज्यादा महत्वपूर्ण है) ॥ १२६ ॥

परुन सौलब पालुन दौरलब,  
सहज गारुन सिखिम तु कूठ ।  
अव्यासकि गनिरय शासतुर मोठुम,  
जीतन आनंद निश्चय गोम ॥ १२७ ॥

सुलभं हि पठनं नित्यं  
दुर्लभं तस्य पालनम् ।

दुर्लभः सहजानन्दः —  
शास्त्रं विस्मृत्य प्राप्यते ॥ १२७ ॥

पढ़ना सुलभ (आसान) है किन्तु उसका पालन करना दुर्लभ (कठिन) है। (इसी प्रकार) सहज (स्वात्म) को खोजना भी दुष्कर है। अभ्यास के घने कुहरे में जब मैं सारे शास्त्र भूल बैठी तब मुझे चेतन-आनंद की प्राप्ति हुई ॥ १२७ ॥

मंदछि हांकल कर छ्यनेम,  
यैलि ह्यडुन गेलुन असुन प्रावु ।  
आरुक जामु कर सन दज्यम,  
यैलि अंदर्युम खार्युक रोज्यम वारु ॥ १२८ ॥

लज्जा विशृङ्खला तत्र सम्यग् भवितुमर्हति ।  
अपशब्दान् यदा क्षन्तुं शक्तिरन्तर्जनिष्यते ॥ १२८ ॥  
लज्जा-जवनिका लग्ना ज्वलिष्यति क्षणान्तरे ।

यदाहि मन्मनो-वाजी ममायत्तो भविष्यति ॥ १२८ ॥

लाज की साँकल तभी टूट सकेगी जब दूसरे के उलाहनों, हंसी-जाक और अपशब्दों को सहने की मुझमें क्षमता आ जाएगी। असल, लाज का यह पर्दा तभी जलेगा जब मेरे अन्तर्मन का स्वच्छंद होना मेरे वश में रहेगा ॥ १२८ ॥

सुत तु कृत सोरय पज्यम,  
कनन नु बोजुन अछ्यन नु बावु ।  
ओरुक दपुन यैलि वौदि वुज्यम,  
रतन दीप प्रजल्यम वरजनि वावु ॥ १२९ ॥

कर्णद्वयं मे नश्रुणोत्त्वभद्रं, नेत्र-द्वयं पश्यतु नो विरूपम् ।  
सहै सदाऽहं प्रियमप्रियं वा, कदा भवेज्जीवन मीदृशं मे ॥ १२९ ॥

यदात्मनः कर्षणमुद् भविष्यति,  
बाधाशतयद् विलयं गमिष्यति  
ममान्तरे निःस्व-प्रभञ्जनेऽपि,

रत्नप्रदीपो ज्वलितो भविष्यति ॥ १२९ ॥

भला और बुरा मुझे समभाव से सहता है। कान मेरे न बुरा हैं और आँखें मेरी न बुरा देखें। हृदय में मेरे जब उधर का आह्वान (स्वात्म का आह्वान) उद्बुद्ध होगा तब मेरे भीतर अकिंचनता के भंजन में भी रत्नदीप प्रज्वलित होगा ॥ १२९ ॥



ल्यकु तु थाकु प्यठ शेरि ह्यज्जम,  
 न्यंदा सपनिम पथ ब्रौठ तान्य ।  
 लल छ्यस कल जाह नो छ्यनिम,  
 अदु येलि सपनिस व्यपिहे क्याह ॥ १३० ॥

तिरस्क्रिया थूकृतिरप्रसह्या,  
 मया शिरोधार्यकृता समन्तात्  
 न निन्दया लल्लजनस्य बाधा-  
 पूर्णे हि कुम्भे न विशेष किञ्चित् ॥ १३० ॥

मैंने गाली-गलौज और थूक-फटकार को शिरोधार्य कर लिया।  
 मेरी निंदा तो आगे-पीछे हुई है और होती रहेगी। मगर इससे मुझ  
 लल की एकाग्रता में कभी व्यवधान नहीं पड़ा क्योंकि मेरी उपलब्धियों  
 का घर तो पहले से ही भरा पड़ा है, उसमें और कुछ भला कैसे समा  
 सकता है ? ॥ १३० ॥

कंदो ! करख कंदि कंदे,  
 कंदो ! करख कंदि विलास ।  
 बूगय मीठि दित्थि यथ कंदे,  
 अथ कंदि रोजि सूर न तु सास ॥ १३१ ॥

त्वं चेत् तनुं चिन्तयसि प्रमुग्धः,  
 शरीर-सज्जां वितनोषि नित्यम् ।

चिनोषि चेद् भोग-विलास-साधनं,

हा हन्त ! सर्वं भस्मी भविष्यति ॥ १३१ ॥

हे मनुष्य ! यदि तू हमेशा अपने तन की चिन्ता करता रहेगा, तन  
 की ही साज-सज्जा में खोया रहेगा, तन के लिए भोग-विलास के साधन  
 जुटाता रहेगा, तो यह जान ले कि तेरी इस देह की कभी राख तक भी  
 न बची रहेगी ॥ १३१ ॥

सोमन गारुन मंज यथ कंदे,  
 यथ कंदि दपान सौख्य नाव ।  
 लूब मूह जलिय शव यियी कंदे,  
 पैथ्य कंदि तीज तये सोर प्रकाश ॥ १३२ ॥

स्वस्मिन् गवेषये शिवं हि निजस्वरूपम्  
 कामादिदोषरहितं यदि मानसं ते ॥ १३२ ॥  
 शोभिष्यते तवतनुर्विमला हि भानो  
 स्तेजस्विता विलसिता सर्वाङ्गमध्ये ॥ १३२ ॥

(हे मनुष्य ! ) तू अपने तन में ही सुमन (सच्चे मन) से उसे खोज  
 जिसका तू स्वरूप है। तेरे मन से जब लोभ-मोह मिट जायेंगे तो तेरा  
 यह तन सुशोभित होगा और तेज एवं सूर्य-प्रकाश से भास्वरित हो  
 जाएगा ॥ १३२ ॥

नफसुय म्योन छुय होस्तुय,  
 अभ्य हंसत्य मोंगनम गरि गरि बल ।  
 लछि मंज सास मंज अखा लौसुय,  
 न तु ह्यतिनम सारिय तल ॥ १३३ ॥

लुब्धं मनो मे गजराज-तुल्यं  
 परीक्षते तत् प्रतिवासरं माम् ।  
 मृदनाति सर्वास्तु सहस्र-मध्ये,  
 कश्चिन्नरस्तस्य भयाद् विमुच्यते ॥ १३३ ॥

मेरा यह लोभी-मन हाथी समान है। यह हमेशा मेरे बल की  
 परीक्षा लेता रहा है। इसके प्रभाव से लाखों, हजारों में एकाध बचा  
 हो तो हो, नहीं तो इसने सबको रोंध डाला है ॥ १३३ ॥



ख्यनु ख्यनु करान कुन नो वातख,  
न ख्यनु गछ्ख अहंकारी ।  
सोमुय खे मालि सोमुय आसख,  
समि ख्यनु मुञ्जरनय बरुन्यन तारी ॥ १३४ ॥

भोगैर्नकिञ्चित्परिलभ्यते नर !

भोगोपलब्धौ कुरुषेऽभिमानम्  
समस्थितस्तर्पय करणजात,  
मुन्मुक्तद्वारो हि जनिष्यसे मुदा ॥ १३४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) खा-खाकर (अत्यधिक सुख-वैभव का भोग करने पर) कहीं का नहीं रहेगा और न खाने पर (अपनी इच्छाओं का नितांत शमन करने पर) अहंकारी बन जाएगा (तुझे अपनी उपलब्धि का दंभ हो जाएगा) इसलिए तू समरूप में (न ज्यादा न कम) अर्थात् वांछित मात्रा में अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर, इसी सब विधि से तेरे बंद द्वार खुल जाएंगे ॥ १३४ ॥

कुस मरि तय कसू मारन,  
मरि कुस तय मारन कस ।  
युस हर-हर त्राविथ गरु गरु करे,  
अदु सु मरि तय मारन तस ॥ १३५ ॥

को नाम मृत्योर्वशगो भविष्यति

कः कस्य हन्ता भ्रममात्रमेव  
हर-हरं यो विस्मृत्य ब्रूयाद्  
गृहं-गृहं तस्य वधो भविष्यति ॥ १३५ ॥

कौन मरेगा और किसको मारा जायेगा ? मरेगा कौन और मारेगे किसको ? जो हर-हर (भगवान) को भूलकर घर-घर करेगा, वही मरेगा और उसी को मारा जाएगा ॥ १३५ ॥

गौर शब्दस युस यछ पछ बरे,  
ग्यानु वगि रटि ज्यतु तौरगस ।  
येंदरय शोमिथ आनंद करे,  
अदु कुस मरि तय मारन कस ॥ १३६ ॥

अस्यास्ति श्रद्धा गुरुप्रोक्त-शब्दे

ज्ञानस्य घल्गा ह्य-चित्त-रोधे ।  
वशे खजातं मुद् यस्य चित्ते,  
न तस्य मृत्युर्न च तस्य मारकः ॥ १३६ ॥

जो गुरु-शब्द पर आस्था और श्रद्धा रखे, ज्ञानरूपी लगाम से अपने चित्तरूपी तुरंग को काबू में रखे, जो इन्द्रियों को वश में करके आनंद-भोग करे, वह भला कैसे मर सकता है और उसे भला कौन मार सकता है ? ॥ १३६ ॥

रंगस मंज छुय ब्योन ब्योन लबुन,  
सोरुय जालख ब्रख तय सौख ।  
ज्रख रुश तु वार गालख,  
अदु डेशख शिव सुंद मौख ॥ १३७ ॥

नामानि रूपाणि बहूनि सन्ति,

विश्वस्य मञ्चे जगदीश्वरस्य ।  
द्वन्द्वं सहिष्ये न करिष्यसे घृणाम्,  
तवाहि ते शंकर-दर्शनं भवेत् ॥ १३७ ॥

इस संसाररूपी रंगशाला में तुझे उस (ईश्वर) के विभिन्न नाम-रूप मिलेंगे । (इस वैभिन्न्य में उसे पा लेना ही बड़ी बात है) इसके लिए जब तू सुख-दुःख सह लेगा; घृणा, वैर, क्रोध आदि को मन से गला देगा तब तुझे शिवमुख के दर्शन होंगे ॥ १३७ ॥



लोलुकि नारु खलि लौलि ललनोवुम,  
मरनम मौयस तु रुचुस नु जरम,  
रंग रेछि जातुसुय क्याह नु रंग गोम,  
बो दपुन ओलुम क्याह सन करे ॥ १३८ ॥

प्रेमाग्निक्रोडे तमलालयं यदा,  
तदा मृताऽहं मरणात्पूर्वम्  
जन्मक्षणे मे नहि जाति-रूप  
महं विलीनेति नवीन-रूपम् ॥ १३८ ॥

प्रेम की अग्निरूपी गोदी में मैंने उसे (परम-तत्त्व को) डुलाया जिससे मरने से पूर्व ही मर गई। जन्मते समय तो मेरा न कोई रंग था और न कोई जाति किन्तु अब मेरे कई रंग हो गये हैं। 'मैं' कहना छूट गया, यह सबसे बड़ा रंग है ॥ १३८ ॥

नेशि बौछि मो केशन्नुन,  
यान्य छययि तान्य संदरुन दिह।  
फठ चोन दारुन तु पारुन,  
कर चोपकारुन सौय छय क्रय ॥ १३९ ॥

न पीडयाऽङ्गं क्षुधया पिपासया,  
निभालय त्वं परिक्षीण-देहम्।

अलं व्रतैर्बाह्यप्रदर्शनैरलं

परोपकारं कुरु मुख्य-कार्यम् ॥ १३९ ॥

(रे मनुष्य ! तू) प्यास व भूख के मारे अपनी देह को न तड़पा। जैसे ही यह बुझने लगे (थकने लगे) वैसे ही इसे संभाल ले। तेरे ब्रतोपवास धारने और बाह्याडंबर पालने पर धिक्कार है। परोपकार कर, वही तेरा (परम) कर्तव्य है ॥ १३९ ॥

जनुम प्राविथ वयबव नो छोडुम,  
लूबन बूगन बोसुम न प्रय।  
सोमुय आहार स्यठा जोनुम,  
ओलुम दोख-वाव पोलुम दय ॥ १४० ॥

लब्ध्वा जनिं परिहृता बहुभोगतृष्णा  
लोभेन भोगेन समं न मैत्री  
मतं मया तन्मितभोजनं तदा,  
प्राप्तः प्रभुर्वरगतं च दैन्यम् ॥ १४० ॥

जन्म पाकर मैंने (कभी) वैभव (ऐश्वर्य-भोग) को नहीं ढूँढा (कभी उसकी चाह नहीं की)। लोभ और भोग से प्रीति नहीं रखी। समाहार को ही पर्याप्त माना। ऐसा करने से मेरा दुःख-दैन्य दूर हुआ और दैव को अपना बना लिया ॥ १४० ॥

रावनु मंजय रोवुम,  
राविथ अथि आयस बवसरे।  
असान गिंदान सहजुय प्रोवुम,  
दपुनुय कोसम पानस सरे ॥ १४१ ॥

अहं विलीना स्वस्मिस्तथापि  
विलीनभावस्य गताति चेतना  
विस्मृत्य सर्वं सहजं समागता,  
ज्ञातोऽवबोधस्य शुभ-प्रकारः ॥ १४१ ॥

मैं (स्वात्म में इतना) खो गई कि यह भूल गई कि मैं खो गई हूँ तथा भवसागर में लीन हो गई। हंसते-खेलते मैंने सहज को प्राप्त कर लिया और इस प्रक्रिया को आत्मबोध का आधार बनाया ॥ १४१ ॥



लोलुकि वौखलु वालिज पिशिम,  
 कौकल जजिम तु रुजस रसु ।  
 बुजुभ तु जाजिम पानस चुशिम,  
 कवु जानु तवु सृत्य मरु किनु लसु ॥ १४२ ॥

प्रेमोलूखले सम्यक्, मया पिष्टं स्वमानसम्,  
 गता दुर्वासना शीघ्रं, शान्तभावेन संस्थिता ।  
 अग्नौ तद् हृदयं तप्त्वा, पश्चादास्वादितं मया,  
 न जाने कर्मणाऽनेन, मरणं वा जीवनं मम ॥ १४२ ॥

प्रीति की ओखली में मैंने अपने हृदय को पीसा (कूटा) जिससे भेरी  
 कुवासना मिट गई और मैं शांतभाव से रहने लग गई। पश्चात्, मैंने  
 इस हृदय को भूना-पकाया और उसको चखा। अब मैं यह नहीं जानती  
 कि ऐसा करने से मैं मर जाऊंगी या जीवित रह जाऊंगी ॥ १४२ ॥

कैज्जन दित्तिथम गुलालु यंजुय,  
 कैज्जन जोनुथ नु दिनस वार ।  
 कैज्जन छुनिथम नालय ब्रह्म हंजुय,  
 बगवानु चानि गंज नमस्कार ॥ १४३ ॥

वदासि कस्मैचित्सुन्दरात्मजान्  
 किञ्चिन्न कस्मैचिद् यच्छसि त्वम्  
 हा, ब्रह्म-हत्या-सम-पुत्रिकाः क्वचिन्

नमामि भगवंस्तव चित्रलीलाम् ॥ १४३ ॥

कुछ को तुमने कई गुलेलाला दिए (अर्थात् पुत्र ही पुत्र दिए) और  
 कुछ को कुछ भी न देना उचित जाना। कुछ के गले ब्रह्म-हत्याएँ (पुत्रियाँ  
 ही पुत्रियाँ) मढ़ दीं। हे भगवान् ! तेरी (अपरंपार) गति को नमस्कार  
 है ॥ १४३ ॥

कैज्जन द्युतथम ओरय आलव,  
 कैज्जन रचायि नालय व्यथ ।  
 कैज्जन अछ्य लजि मसच्यथ तालव,  
 कैज्जन पपिथ गय हालव व्यथ ॥ १४४ ॥

आहूतास्स्वयमेव केचिन्नराः— केचिद् वितस्तां रताः  
 केचित्ते मधुराभिधान-मदिरा मापीय मत्तास्तथा  
 तेषां दृष्टिरवस्थिता तव गृह प्रान्तोन्मुखी केचन 69  
 शलभा-भक्षित-नष्ट साधनकृषेः प्राप्ता न ते धामकम् ॥ १४४ ॥

कुछ को (हे भगवान् ! ) तुमने स्वयं बुलाया (अर्थात् उन पर  
 जन्म से ही ईश-कृपा हुई), कुछ ने वितस्ता नदी को गले लगाया (खूब  
 संझ्या-स्नान करने लगे) कुछ तुम्हारे नाम की हाला पीकर बीरा गये और  
 उनकी नजरें छत की ओर एकटक जम गईं और कुछ की पकी फसलें  
 टिड्डियाँ खा गईं—तुम तक पहुँचते-पहुँचते भी रह गए ॥ १४४ ॥

कैज्जन रंति छय शिहिज बूनी,  
 कैज्जन रंति छय बर प्यठ हूनी ।  
 कैज्जन रंति छय अदल त बदल,  
 कैज्जन रंति छय जदल छाय ॥ १४५ ॥

छायायुक्त चिनारवृक्षकल्पाः काश्चिद्भवन्त्यङ्गनाः,  
 केषांचित्प्रमदा भ्रमन्ति भुवने कौलेयवृत्ति गताः ।  
 काश्चिच्छापल-चर्चिता नव-नवं पुरुषान्तरं कुर्वते,  
 काश्चिच्छाया-धर्म-कर्म-कुशलाः साहाय्यं मातन्वते ॥ १४५ ॥

कुछ की रानियाँ (पत्नियाँ) छायादार चिनार के पेड़ समान होती हैं,  
 कुछ की पत्नियाँ द्वार पर पड़ी कुत्तियों के समान होती हैं, कुछ की पत्नियाँ  
 अदल-बदल करने (कहा न मानने) वाली होती हैं और कुछ की पत्नियाँ  
 धूप-छाँह की तरह आवश्यकतानुसार सहायक सिद्ध होनेवाली होती  
 हैं ॥ १४५ ॥



ग्रट छु फेरान जेरि जेरे,  
ओह कुय जानि ग्रटुक छल ।  
ग्रटु येलि फेरि तय जाव्युल नेरे,  
गूं वाति पानय ग्रटु बल ॥ १४६ ॥

शनेः शनेश्चञ्चति चूर्णचक्रिका, तद्भेदविज्ञं वत मध्यकीलकम्  
मन्दं चलेच्चक्रदलं यदा तदा, पिष्टं क्षरेत् सूक्ष्मतरं स्वचक्रतः  
पतन्ति गोधूम कणाः स्वतस्ततो मध्ये शनेश्चक्रदलद्वये रहो ।  
एकं समालम्ब्य सुसाधनाया मच्चिन्त्यकण्टलभते परंपदम् ॥ १४६ ॥

चक्की का पाट धीरे-धीरे घूमता है किन्तु अक्ष (मानी-खूँटी) को छोड़  
और कोई चक्की के घूमने के रहस्य को नहीं जानता । जब ऊपर का पाट  
घूमता है तो बारीक आटा निकलता और गेहूँ अपने आप पाटों के करीब  
आता जाता है । (अनवरत साधना और सहिष्णुता से परम उद्देश्य की  
प्राप्ति संभव है) ॥ १४६ ॥

शिव छुय जाव्युल जाल वाहराविथ,  
क्रंजन मंज छुय तरिथ कयथ ।  
जिन्दु नय वुछहन अदु कति मरिथ,  
पान मंजु पान कड़ व्यज्जारिथ कयथ ॥ १४७ ॥

विस्तीर्य जालं जगति स्थितशिवो

व्याप्तः सदा सर्वशरीर मध्यगः

मृत्यो स्थिते द्रक्ष्यसि किं, विवेकतो

निमालय त्वं प्रभुमन्तराले ॥ १४७ ॥

शिव अपना बारीक जाल बिछाये सर्वत्र व्याप्त है । देखो तो कैसे  
सबके शरीरों (अस्थि-पंजरों) में रच-पच गया है । यदि तू जीते जी  
उसको न देख सका तो क्या मर कर उसे देखेगा ? विवेक और आत्म-  
चितन से काम ले और उसे अपने भीतर खोज निकाल ॥ १४७ ॥

शिव छुय थलि थलि रोजान,  
मो जान ह्योद तय मुसलमान ।  
बुख अय छुख तु पान परजान,  
सो छय साहिबस सूत्य जान ॥ १४८ ॥

स्थले स्थले शङ्कर एव राजते,  
हिन्दू-तुरुष्केषु कथं विभेदः ?  
प्रबुध्य स्वात्मान मवेहि सम्यक्  
स परिचयस्ते हरिणा समं स्यात् ॥ १४८ ॥

शिव थल-थल पर (सर्वत्र) व्याप्त है । (अतः रे मनुष्य ! तू)  
हिन्दू और मुसलमान में भेद न जान । यदि तू प्रबुद्ध है तो अपने आपको  
पहचान, यही साहिब (भगवान्) से परिचय करने के बराबर है ॥ १४८ ॥

चुय दीवु गरतस तु दरती सजख,  
जेय दीवु दितिथ क्रंजन प्रान ।  
जुय दीव ठनि रौस्तुय वजख,  
कुस जानि दीव चोन परमान ॥ १४९ ॥

देव ! त्वमेव जगतीतल-जीवनस्य

स्रष्टा त्वमेव तस्मिन् कृतपञ्चप्राणः

त्वं शब्दशून्यो दुर्बोध देव !

तवैव सर्वत्र ध्वनिविराजते ॥ १४९ ॥

हे देव ! तुम ही इस जीवन और धरती (जगत्) के सृजक हो ।  
तुम ही ने हे देव ! पंचभूतों में प्राण फूँके हैं । हे देव ! यद्यपि तुम  
ध्वनि-रहित हो किन्तु तुम्हारी ही ध्वनि हर जगह व्याप्त है । हे देव !  
तुम्हारा प्रमाण (गति-अवगति) भला कौन जान सका है ? ॥ १४९ ॥



दीशि आयस दश दीशि जलित्थ,  
जलित्थ ज्रोठुम शुन्य अदु वाव ।  
शिवुय ड्यूठुम शायि शायि मीलित्थ,  
शे तु ले व्रोपिमस तु शिवुय द्राव ॥ १५० ॥

चक्रमणं दिक् चक्रोऽस्मिन् कृत्वा देशं स्वमागता,  
दिवीर्यं ज्ञात्वातं च निर्जनं च महावनम् ।  
पञ्चेन्द्रियाणि मनसा वशीकृत्य गुणत्रयम्, 137  
व्यलोकयं शिवं व्याप्तं सर्वत्र जगतीतले ॥ १५० ॥

मैं दसों दिशाओं में घूम फिरकर अपने देश (अन्तर्जगत्) में लौट आई । इसके लिए मुझे जाने कितने शून्यों और तूफानों को भेदना पड़ा । जब छः (पञ्चेन्द्रियों व मन) और तीन (त्रिगुणों) को वश में कर लिया तो पाया कि शिव जगह-जगह (सर्वत्र) व्याप्त है ॥ १५० ॥

शुन्युक मादान कौडुम पानस,  
मे ललि रुजुम न बौद नु होश ।  
वेदो सपनिस पानय पानस,  
अदु कमि हिलि फोल ललि पंपोश ॥ १५१ ॥

शून्यं महामार्गं मपारयं यदा,  
लल्ला तदाऽहं विस्मृत्य सर्वम् 956  
लब्ध्वा स्वकीयानुभवं मदीया  
स्थितिः स्थिता पङ्क्तु विरुद्धकञ्जवत् ॥ १५१ ॥

जब मैंने शून्य के एक असीम मैदान (क्षेत्र) को पार किया तो मुझ लल को न बुद्धि रही और न होश । तब स्वात्म के भेद को पाकर मेरी स्थिति कीचड़ में उगे कमल जैसी हो गई ॥ १५१ ॥

मिथ्या असथ कपट त्रोवुम,  
मनस कोरुम सुय वौपदीश ।  
जनस अंदर कीवल ज्रोनुम,  
अनस खयनस कुस छुम द्वीश ॥ १५२ ॥

असत्य-मिथ्याचरणादि हेयं;  
मयोपदिष्टं निजमानसं यदा । 191  
जने-जने केवल मेध वृष्टं,  
व्यर्थं तदाऽभूदुपवासकष्टम् ॥ १५२ ॥

मैंने मिथ्याचार, असत्य व कपट को त्यागने का अपने मन को उपदेश दिया तथा प्रत्येक जन में उस 'केवल' को व्याप्त जाना । अतः फिर अन्न खाने से द्वेष क्यों रखूं (व्रतोपवास क्यों करूं) । (व्रतोपवास से अधिक महत्त्वपूर्ण है मन को शुद्ध रखना) ॥ १५२ ॥

शिशरस वुथ कुस रटे,  
कुस बौके रटे वाव । 25  
युस पांछ यंदरिय ज्यलित्थ ज्रटे,  
सुय रटे गटे रव ॥ १५३ ॥

शिशिरे बर्षतो मेघान्, कः पुमान् वारणे क्षमः  
समीरवेगं कः कुर्यात्, स्वकीये मुष्टिबन्धने  
पञ्चेन्द्रियाणि संयन्तुं, समर्थः स्यात्तु कश्चन,  
अन्धकारे रविं बद्धुं, समर्थः स्यात्तवा नरः ॥ १५३ ॥

शिशिर में बरसनेवाले पानी को भला कौन रोक सका है ? वायु को भला कौन मुट्ठी में बाँध सका है ? जो अपनी पाँच इंद्रियों को वश में कर सका वह अन्धकार में भी रवि को पकड़ सका ॥ १५३ ॥



सिहनी हुंद शिकार पांज कवु जाने,  
 हाँठ कवु जाने पौतरय दोद ।  
 शमुहुच्य कदुर लेश कति जाने,  
 मंछ्य कति जाने पौपुर्य गथ ॥ १५४ ॥

सिहीबधं किं कुर्याच्छादनो  
 बन्ध्या न जानाति प्रसूतिपीडाम् ॥ १५५ ॥  
 नहि काचदीपस्य तुला ह्यलातके  
 न मक्षिकायां शलभस्य योग्यता ॥ १५४ ॥

सिहनी का शिकार करना भला बाज क्या जाने ? बाँझ भला  
 पुत्र-पीड़ा क्या जाने ? शमा की कद्र भला मशाल क्या जाने और  
 शलभ की गति भला मक्खी क्या जाने ? ॥ १५४ ॥

लराह लज्जुम मंज मादानस,  
 अंच अंच करिमस तंकिपि तु गाह ।  
 सौ रोजि येत्य तय बौ गछु पानस,  
 वोन्य गव वानस फालव दिथ ॥ १५५ ॥

अकारि गेहं शुभ-सज्जितं परं,  
 विचिन्तितं हा ! तद्विहैव हास्यते ।

अहं गमिष्यामि तथैव सर्वथा,  
 यथा वणिक् पण्यगृहं पिधास्यति ॥ १५५ ॥

बीच मैदान में मैंने एक मकान बनाया । उसको चारों ओर से  
 अच्छी तरह सजाया-संवारा । (मगर, अफसोस ! ) वह मकान यहीं  
 रह जाएगा और मैं चली जाऊँगी मानो दुकानदार दुकान बंद करके चला  
 जाए ॥ १५५ ॥

सौयि कुल नो दौद सुति संगिजे,  
 सरपिनि ठूलन दीजि नो फाह ।  
 स्यकि शाठस फल नो वविजे,  
 रावुरिजि नु कोम याज्यन तील ॥ १५६ ॥

सिञ्च नो कदापि त्वं, पयसा वृश्चिकौषधम्,  
 सर्पिण्या नाण्डमासेव, न वापं वालुका-सृतौ ।  
 ब्रूसस्य शाक-निर्माणे न तैलं नाशयेत् सुधीः,  
 दुःखवृद्धिर्भवेद् येन, न कुर्यात् तद् विचारवान् ॥ १५६ ॥

x विच्छू बूटी को दूध से कभी सींचना नहीं, सर्पिणी के अंडों को कभी  
 सेना नहीं, बालू के सेतु पर कभी बीज बोना नहीं तथा भूँसी के रोटले  
 (खताई) पर कभी तेल बर्बाद करना नहीं ॥ १५६ ॥

मूडस ग्यानुच कथ नो वनिजे,  
 खरस गोर दिनु रावी दौह ।  
 युस युथ करे सु त्युथ सौरे,  
 करे करिजि नु पनुन पान ॥ १५७ ॥

मूढाय नोपदेष्टव्यं, गर्वभाय गुडार्पणम्,  
 यथाकर्म तथा भोगस्तत्रात्मानं न पातयेत् ॥ १५७ ॥

मूढ़ को ज्ञान की बात कभी कहना नहीं, गर्व को कभी गुड़ खिलाना  
 नहीं । जो जैसा करेगा सो वैसा भरेगा, तू व्यर्थ अपने को कुएं में ढकेलना  
 नहीं ॥ १५७ ॥



औरस नेरि नु मौदुर शीरय,  
निरवीरस नेरि न शूरा नाव ।  
पूरखस प्रनुन छुय हंस्यतिस कशुन,  
यसो मालि दांदस व्यहा ज़ाव ॥ १५८ ॥

मधूरसो रक्तफलान्त लभ्यते,  
न कातरः शूर पदेन शस्यते,  
न मूर्खबोधः प्रगुणाय कल्पते,  
वीर्येण हीनो वृषभो निरर्थकः ॥ १५९ ॥

आलूबुखारे से कभी मोठा रस निकलेगा नहीं, निर्वीर्य का नाम कभी शूर कहलाएगा नहीं, मूर्ख को समझाना हाथी को खुजलाने के समान (व्यर्थ) है वैसे ही जैसे आलसी बैल से काम लेना कठिन है ॥ १५८ ॥

बबरि लंगस मुशुक नो मरे,  
हूनि बस्ति कोफूर नेरि नु जांह ।  
मनु यौद ग्वारुहन फेरिय जेरे,  
न तु शालुटुगे नेरिय क्याह ॥ १५९ ॥

लतायां बबरिख्यातायां सुगन्धो राजते सदा,  
सारमेये न लभ्येत, कर्पूरामोदमाधुरी ।  
ध्यान-मग्नमना भूत्वा, तन्मार्गणरतो भव,  
अविष्यति शिव प्राप्तिः, भृगाल-भषणेन किम् ॥ १५९ ॥

रेहान (पुष्प-विशेष) की लता से कभी सुगंध नहीं जाती और कुत्ते की खाल से कभी कर्पूर की सुवास नहीं आती । (रे मनुष्य ! तू) यदि ध्यान-मग्न होकर उसको ढूँढ़े तो तुझे परमशिव की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा गीदड़ की तरह चिल्लाने से कोई लाभ नहीं है ॥ १५९ ॥

आयस ति स्योदुय तु गछु ति स्योदुय,  
सेदिस हौल मे कर्यम क्याह ।  
बो तस आसुस आगरय व्यञ्जय,  
व्यदिस तु व्यदिस कर्यम क्याह ॥ १६० ॥

समागता सरलमनास्तथैव,  
गन्तास्म्यहं सरलस्वभावधरवता  
किं मे करिष्यति शठः शिवज्ञातभावा,  
किंवा शिवोऽपि कुर्यान्मम निर्भयायाः ॥ १६० ॥

मैं सीधी ही आई थी और सीधी ही जाऊंगी भी (अर्थात् जन्म से ही मैंने सरल स्वभाव अपनाया और अन्तकाल तक इसी सरल स्वभाव को अपनाऊंगी) मुझ सीधी को भला टेढ़ा (शठ स्वभाववाला) क्या करेगा ? वे (परब्रह्म) तो मुझे प्रारंभ से ही जानते-पहचानते हैं अतः मुझ जानी-पहचानी का वे भी भला क्या कर सकेंगे ? (अर्थात् अपनी सहज सरलता के कारण मैं निर्भय हो चुकी हूँ) ॥ १६० ॥

अंदर आसिथ प्यबर छोंडुम,  
पवनन रगन करनम सथ ।  
द्यानु किन्य दय जगि कीवल जोनुम,  
रंग गव रंगस मीलिथ कथ ॥ १६१ ॥

अन्तस्थितस्य देवस्य बहिरन्वेषणं कृतम् ।  
प्राणायाम-प्रयासेन, तस्यावाप्तिर्मया कृता ।  
ध्यानयोगेन प्राप्ताऽहं, कैवल्यपदं दुर्लभम्,  
तेन मे रूपसौभाग्यं, तस्य रूपेण संगतम् ॥ १६१ ॥

वे मेरे अन्दर थे मगर मैं उन्हें बाहर ढूँढ़ती रही । तब (प्राणायाम द्वारा) मुझे अपनी रंगों के माध्यम से सात्वता मिली और ध्यानादि योग-क्रिया से इस जगत् की कैवल्य सत्ता को जान लिया । परिणामस्वरूप मेरा रंग (जगत् के) रंग से मिल गया ॥ १६१ ॥



कुस हा मालि लूसुय नु पकान पकान,  
 कुस हा मालि लूसुय नु वौलगान सुमीर ।  
 कुस हा मालि लूसुय नु मरान तु ज्यवान,  
 कुस हा मालि लूसुय नु करान न्यंघा ॥ १६२ ॥

हा ! को न श्रान्तो मार्गप्रयाणे,  
 हा ! को न श्रान्तोहि सुमेरु-लङ्घने  
 हा ! को न श्रान्तो मरणादिचक्रे,

67

✓✓✓ हा ! को न श्रान्तोहि परस्य निन्दया ॥ १६२ ॥

कौन चलते-चलते थका नहीं ? कौन सुमेरु पर्वत को लांघते-लांघते थका नहीं ? कौन जन्म-मरण के चक्कर से थका नहीं ? और कौन दूसरों की निंदा करते-करते थका नहीं ? ॥ १६२ ॥

जल हा मालि लूसुय नु पकान-पकान,  
 सिरयि लूसुय नु वौलगान सुमीर ।  
 चन्द्रम लूसुय नु मरान तु ज्यवान,  
 मनुष्य लूसुय नु करान न्यंघा ॥ १६३ ॥

जलं न श्रान्तं हि प्रवाह मार्गे,  
 सूर्यो न श्रान्तो हि सुमेरु-लङ्घने  
 चन्द्रो न श्रान्तो मरणादिचक्रे

67

✓✓✓ नरो न श्रान्तो हि परस्य निन्दया ॥ १६३ ॥

जल चलते-चलते थका नहीं, सूर्य लांघते-लांघते थका नहीं, चन्द्रमा मरते-जन्मते थका नहीं और मनुष्य निंदा करते-करते थका नहीं ॥ १६३ ॥

कुस बब तय कौसु माजी,  
 कमी लाजी बाजी बठ ।  
 काल्य गछुख कांह ना बब माजी,  
 जानिथ कवु लाजिथ बाजी बठ ॥ १६४ ॥

कस्ते पिता का जननी तवास्ति,  
 केनापि साकं कथमस्ति संगमः ।

विहाय सर्वं गमनं भवेद् यदा,

62

✓✓✓ न कापि माता जनको न कश्चित् ॥ १६४ ॥

कौन तेरा बाप और कौन तेरी माँ ? किसके साथ तू सम्बन्ध जोड़ रहा है ? कल तू यहाँ से चला जायगा और फिर तेरा न कोई बाप होगा और न माँ । यह सब जानकर तू (व्यर्थ के) सम्बन्ध क्यों जोड़ रहा है ? ॥ १६४ ॥

काली सथ कौल गछुन पाताली,  
 अकाली जल मालु वरशन प्यन ।  
 मानस टाक्य तय मसकिय प्याली,  
 ब्रह्मन तु ज्वाली इकवटु ख्यन ॥ १६५ ॥

तादृक् कुकालोहि समागमिष्यति,  
 रसातलं यास्यति सप्तलोकी ।  
 अकालवृष्टिर्जगतीतले भवेत्,  
 चाण्डालवद् ब्राह्मण-भोजनं भवेत् ॥ १६५ ॥

60

✗ ऐसा कुकाल आएगा कि (पृथ्वीलोक पर बढ़ रहे पापाचार के कारण) सातों लोक रसातल में चले जाएँगे । तब असमय वृष्टि होगी और ब्राह्मण व चाण्डाल एक साथ मांस-मदिरा का सेवन करेंगे ॥ १६५ ॥



अटुच सन दिथ थावन मटन,  
 लूब बौछि बोलन ग्यानुच कथ ।  
 फट् फट्य नेरन तिम कति वटन,  
 वुकय मालि छुख पूर कड पथ ॥ १६६ ॥

ये छद्मवेषाः स्थित चौरवृत्तयः  
 प्रदर्शने ज्ञान कथाऽभिभाषिणः  
 प्राप्तां न किञ्चिन्मम सन्निधानात्

प्रबुद्ध ! द्वारात् त्यज पापचारिणः ॥ १६६ ॥

कुटिल व छद्मवेषी इधर का माल चुराकर उधर कर देते हैं और ऊपर से (मारे लोभ के) ज्ञान की बातें बखानने का स्वांग रचते हैं। ऐसे लोग मिथ्या-प्रदर्शन खूब करते हैं, वे भला इससे पाएँगे क्या ? यदि (रे मनुष्य ! ) तू प्रबुद्ध है तो ऐसे मिथ्याचार से पग पीछे हटा ले ॥ १६६ ॥

संसारु नाम्य ताव तञ्जुय,  
 मूडन किञ्जुय तावुनु आये ।  
 ग्यान मुद्रा छय यूगियन किञ्जुय,  
 सु यूगु कलि किन परजनु आये ॥ १६७ ॥

तप्तमृजीषं विश्वाख्यं, मूढानां कृते सदा 271  
 ज्ञानरूपं तदेवास्ति, योगिनां विदितात्मनाम् ॥ १६७ ॥

संसार नाम का यह तवा मूढ़ों के लिए तपाया गया है-मगर ज्ञान-मुद्रा योगियों (प्रबुद्धों) के लिए है जो योगकला द्वारा संसार के माहात्म्य को पहचान लेते हैं ॥ १६७ ॥

सोबूर छुय ज्युर मरुज तु नूनय,  
 खयनु छुय ट्योठ तु खेयस कुस ।  
 सोबूर छुय सौनु सुंद टूखय,  
 मौल छुय थोद तु हेयस कुस ॥ १६८ ॥

विषयिणां भाति सन्तोषः, कटुतिक्तादिखाद्यवत्  
 तुल्यं सुवर्णपात्रेण, कस्तं मूल्येन क्रेष्यति ? ॥ १६८ ॥

सब्र (सहिष्णुता) जीरा, मिर्च और नमक के समान (कड़वा) है जो खाने में कड़ुआ लगता है। सब्र सोने की थाली है, जिसका मूल्य ऊँचा है, अतः इसे खरीदेगा कौन ? (सहिष्णुता का गुण कष्टसाध्य और दुर्लभ है, इसके लिए बड़े से बड़े त्याग की आवश्यकता है) ॥ १६८ ॥

साहेब छु बिहिथ पानय वानस,  
 सारिय मंगान केंछाह दि ।  
 रोट नो कांसि हुंद राछिय नो वानस ।  
 यि जे गछिय ति पानय नि ॥ १६९ ॥

स्वामी स्वयं पण्यगृहं विधाय,  
 स्थितस्ततो याचन-तत्परां जनाः  
 न तत्र कस्यापि निषेध-बाधा  
 नयस्व यद् वाञ्छसि त्वं सदैव ॥ १६९ ॥

साहिब (ईश्वर) स्वयं दुकान लगाये बैठे हैं। सभी उससे कुछ मांग रहे हैं। (रे मनुष्य ! ) वहाँ किसी की रोक-टोक नहीं है। तुझे जो भी चाहिए स्वयं उठाकर ले जा ॥ १६९ ॥



संसारस मंज बाग कथ शायि रोजय,  
 रोजि परम शिव शंबू अचूर।  
 लौलि मंजबाग बोय ललनावन,  
 जिगरस मंजबाग करस गूर गूर ॥ १७० ॥

तिष्ठानि विश्वेऽस्मिन् कुत्र, यस्मा-  
 दघोर-शम्भुः सर्वत्र राजते।  
 आन्दोलयिष्यामि तमेव क्रोडे,  
 प्राणेन साकं मृदु लालयामि ॥ १७० ॥

अब मैं इस संसार में भला किस जगह रहूँ क्योंकि यहाँ तो हर-एक  
 स्थान पर परमशिव अघोर शम्भु रहते हैं। अतः मैं तो उसी को गोदी  
 में लेकर झुलाऊँगी तथा जिगर से लगाकर डुलाऊँगी ॥ १७० ॥

दोद क्या जानि यस नो बने,  
 गमुक्य जामु हा वलिथ तने।  
 गरु गरु फोरुस प्ययम कने,  
 ड्यूठुम नु कांह ति पननि कने ॥ १७१ ॥

यस्योपरि स्यान्नच दुःखपातः  
 परस्य पीडां स कथं हि विद्यात्।  
 कण्ठावृतायां मयि प्रस्तराहति,  
 न कोऽपि जातो मयि सानुकम्पः ॥ १७१ ॥

जिस पर दुःख न पड़ा हो, वह भला दर्द (की पीड़ा) क्या जाने ?  
 राम के वस्त्र पहनकर मैं घर-घर फिरी और मुझपर पत्थर बरसे तथा  
 किसी को भी मेरा पक्ष लेते हुए न देखा ॥ १७१ ॥

ओरु ति पानय योरु ति पानय,  
 पौत वाने रोजि नु जांह।  
 पानय गुप्त तु पानय ग्यानी,  
 पानय पानस मूद नु कांह ॥ १७२ ॥

इतस्ततोऽसौ सर्वत्र दृश्यते,  
 न लुप्यते दृष्टिपथे कदाचित्  
 गुप्तोऽपि ज्ञाता सर्वस्य मध्ये  
 स एव सर्वमरचक्रवर्ती ॥ १७२ ॥

उधर भी वही और इधर भी वही (अर्थात् जिधर भी नजर जाती  
 है, उधर वही दिखते हैं) वह कभी पीछे रहने (छिपने) वाले नहीं हैं।  
 वह स्वयं गुप्त भी है और ज्ञानी भी। वह कभी मरा नहीं—अमर  
 है ॥ १७२ ॥

आसुस कुनिय तय सांपनिस स्यठा,  
 नजदीख आसिथ गयस दूर।  
 बाहिर बातिन कुनुय ड्यूठुम,  
 गयम छयथ-च्यथ जुवंजाह जूर ॥ १७३ ॥

एकापि दृश्येऽह मनेकरूपा  
 पार्श्वस्थिता ! तस्य तथापि दूरम्।  
 कृत्वा हि मां दूरतरं गतं हा !,  
 चत्वारि पञ्चाशच्चौरमण्डलम् ॥ १७३ ॥

मैं एक ही मगर अनेक बन गई। (उनके) नजदीक होकर भी  
 दूर रही। बाहर-अन्दर एक ही (शिव) तत्व मुझे दिखा था (जिसे  
 प्राप्त करने के लिए मैं ध्यान-मग्न हो गई) किन्तु ये चौपन चोर (पंचेन्द्रियाँ,  
 आवेग, विकार आदि) सब कुछ खा-पीकर मुझे धोखा देकर चले  
 गये ॥ १७३ ॥



अजपा गायत्री हंस हंस जपिथ,  
अहम त्राविथ सुय अदु रठ ।  
येम्य त्रोव अहम सुय छद पानय,  
बो न आसुन छुय वीपदीश ॥ १७४ ॥

मनसाऽनुश्वासं जप हंस-हंस-  
महं-विमुक्तो कुरु ब्रह्मचिन्तनम्  
अहं-विरक्तो हि रम स्वरूपे  
तवानुरूप उपदेश एष ॥ १७४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अजपा गायत्री मंत्र का अपना प्रत्येक सांस में जाप कर । अहं को छोड़कर उस (ब्रह्म-तत्त्व) को धारण कर । जिसने अहं को त्याग दिया वही स्व (आत्मभाव) के रूप में स्थिर रहा । उपदेश की बात भी यही है कि 'मैं' को अस्थायी मान ले ॥ १७४ ॥

दमु दमु ओमकार मन परनोवुम,  
पानय परान तु पानय बोजाय ।  
सूहम पदस अहम गोलुम,  
तेलि लल बो वाञ्जुस प्रकाश स्थान ॥ १७५ ॥

ओङ्कार-पाठं मनसे प्रतिक्रियं  
प्रशिक्षयन्ती स्वयमेव शिक्षिता  
'सोऽहं' पदं प्राप्य विमुक्तमाना,  
लल्लाऽहमाकाशगतं प्रपन्ना ॥ १७५ ॥

इस मन को प्रतिपल ओंकार पढ़ाती रही, स्वयं सुनाती रही और स्वयं ही सुनती भी रही । 'सोऽहम्' पद को प्राप्त करने के लिए 'अहम्' को गला दिया तब कहीं जाकर मैं लल प्रकाश-स्थान तक पहुँच रही ॥ १७५ ॥

यि क्याह आसिथ यि कुस रंग गोम,  
बेरंग कैरिथ गोम लगु कमि शाठय ।  
तालव राजदानि अबख छान प्योम,  
जान गोम जान्यम पनु नुय पान ॥ १७६ ॥  
काऽऽसं पुनः सम्प्रति काहि जाता,  
स्थिता सदा 'तालव राजदानि'वत् ।  
वशीकृता 'अबखछान' समेत स्वात्मना,  
कि भाविमेऽत्र विषये मन एव विद्यात् ॥ १७६ ॥

मैं क्या थी और क्या हो गई । (परमात्मा का ही एक अंश थी किन्तु जन्म लेकर जाने यह किस रंग में रंग गई ।) यह मेरा मन मुझे बेरंग बना के छोड़ गया, अब पता नहीं किस ठौर बहकर पटक देगा । मैं तालवराजदानि जैसी (संयमी और दृढ़-प्रतिज्ञ) थी किन्तु इस अबख-छान रूपी मन ने मुझे मुग्धकर वश में कर लिया । अब मेरा आगे क्या हाल होगा, अच्छा होगा कि बुरा, मेरा दिल ही जानता है ॥ १७६ ॥

करुम जु कारन ते कोमबिथ,  
यवु लबख परलूकस अंख ।  
वोथ खस सिरी मंडलस ज़ोमबिथ,  
तवय ज़ली मरवुग्ग शंख ॥ १७७ ॥

द्विविधं कर्म जानीयात्, द्विविधं कारणं मतम्  
समाहर कुम्भकेनेव, प्राप्यते परमं पदम् ।  
उत्तिष्ठोद्यतो भूत्वा भित्वा सूर्यस्य मण्डलम्,  
अनेन विधिना सर्वं, मरणादि तव नश्यति ॥ १७७ ॥

कर्म दो तरह के (सत् और असत्) तथा कारण तीन तरह के होते हैं । रे जीव ! तू कुम्भक-योग से सबका समाहार कर जिससे तुझे परलोक में परम-पद की प्राप्ति होगी । तू उठ और सूर्यमंडल को पार कर परमगति को प्राप्त करने के लिए उद्यत हो । इसी से तेरा मरण-भय भी दूर हो जाएगा ! ॥ १७७ ॥



मद प्योवुम स्यदु जलन येती,  
रंगन लीलम्य कैम्य काञ्च ।  
कृत्य खेयम मनुश्य मामसुवय नली,  
सोय बो लल तु गव मे क्याह ॥ १७८ ॥

अध्यागताऽहं बहुजन्मजातं  
पीतमया सिन्धुजलं प्रभूतम् ।  
मांसादनं बहुविधा लीलाव्यधाधि  
पश्चाच्च चिन्तनपरा तदभिन्नरूपा ॥ १७८ ॥

मैंने कई जन्म लिये, कभी छककर सिन्धु का जल पिया, कभी संसार के रंगमंच पर तरह-तरह की लीलाएँ कीं, कभी मांस आदि का भी भक्षण किया—मगर अंततः पाया कि मैं तो वही लल हूँ फिर यह आवागमन का चक्र कैसा ? ॥ १७८ ॥

मरिथ पञ्जबूथ तिम फल हंदे,  
जेतनु दानु वौखुर खयथ ।  
तवय जानख परमु पद छांडि,  
हिशी खोशि खोर केह ति नु खयथ ॥ १७९ ॥

अस्मिन्नहो भौतिक कायमध्ये  
स्थितं हि पञ्चेन्द्रिय - मेष - वृन्वम्  
तस्मै त्वया ज्ञान-कणास्तु देया  
हत्वा पुनर्दिव्यपदं प्रयाति ॥ १७९ ॥

रे व्यग्र प्राणी ! अपनी पंचभूत काया में स्थित पंचेन्द्रियों रूपी मेषों (नर-भड़ों) को तू अध्यात्म-ज्ञान का दाना (खाद्य) खिला और तत्पश्चात् उनका वध कर । इसी से तुझे परम-पद की प्राप्ति हो जाएगी, अन्यथा ऐसा न करने पर कोई लाभ न होगा ॥ १७९ ॥



۱  
 Poshen Lal Bhu  
 سرود آدھکار سو رکمت  
 Dated: 5-5-1979 Sunday

श्री लाल शुक्ल  
 श्री लाल शुक्ल  
 श्री लाल शुक्ल

Poshen Lal  
 Poshen  
 (लाल शुक्ल)

लाल शुक्ल जी का जन्म १९१९ ई. में हुआ था।  
 लाल शुक्ल जी का जन्म १९१९ ई. में हुआ था।  
 लाल शुक्ल जी का जन्म १९१९ ई. में हुआ था।

रावल (१९९९)



# ملی شوری و اکیہ برہم

پرستار و نا

## شری ملی شوری و اکیہ گرتھ کا پرچار

پہلے یہ بات لکھ کر گرتھ لکھی کہ کتنا چاہیے کہ جس سے بھگتی بڑھے۔ پر بار بھگتی بڑھے۔ من میں شانتی آتی ہو۔ پڑھنے میں پریم بڑھے۔ آدھن میں اکیہ آدھن سے گنتی بڑھے۔ ٹیک ات ہی لکھ شون کا یہ ایشوری و اکیہ گرتھ ہے۔ سن پرشوں۔ ابا سکوں اور یوں کے دھارنے کے لایا۔ یہ ایک ادویت ویدانت کا شیو ہے۔ ہر لہے۔ پنڈ۔ برہما۔ آتم ویدا اور تھو ویکھ اور بندر یہ لکھ کر لے دالا نام۔ کر دھ۔ لکھ۔ مہ اور میں ہر کو مٹانے والا اور گوڑھ پھوڑ توں کو۔ تھوڑے میں سمجھا دینے والا اور ادھیا تک پورن اور ستھا کی پی لایا کر دینے والا۔ گراں۔ کرم بھگتی اور یوگ کا میل کر دینے والا سندھ کے دھوت منشوں کو شانتی لے کر نیکام۔ آچرن میں لگا دینے والا۔ شرید بھگوت گیتا۔ اچشد ادویت ویدانت۔ یوگ اور گراں کا یہ سمجھا دینے والا سارے

سند میں اس سے بڑھ کر ان مول رتن بھارت و اسنول کو مل ہی نہیں سکتا۔ اس گرتھ کا ساریہ ہے کہ جسے دھوت منشو اٹھو۔ جاگو۔ سادھان ہو جاؤ۔ سریشٹ ہما پرشوں کو کھوج کر ان کے دوا را اس پر برہم پریشور کو جان لو۔

## سوارنج عمری شری ملی شوری

ملی شوری چودھویں صدی بکری کے آغاز میں جس وقت کہ کشیر میں مسلمانوں کا راج تھا گزری ہے۔ کشیر میں پانچو کے نزدیک موضع برہم پور میں ایک برہمن کے گھر میں بھادون پور تماشی کہ دن جنم دھارن کیا۔ ماں باپ نے اس کا نام پدموٹی رکھا۔ تیرہ چودہ سال کی عمر میں اس کی شادی موضع (پدما پور) موجودہ پانچور میں ایک برہمن کے گھر میں رہائی گئی۔ خانہ داری کے لکھن میں پڑھ کر بھی یہ دیوی شروع سے برہما رتی کی زندگی بسر کرتی رہی۔ سسرال میں اسی دیوی کو پتی اور ساس نے حد سے زیادہ دھت اور کٹ دیا۔ مگر یہ دیوی سب کچھ سہن کر کے اپنے شرم اور دھم میں رہ کر سون ہی دھارن کرتی رہی یعنی سن کر بہری اور دیکھ کر اندھی جیسی آہستہ آہستہ اس کو دھیمہ کا رنگ ملی چھوٹے لگا۔ پورو ابھاس کا کرم پھل یوگا پکٹے پر اس دیوی نے گرتھ کے چھٹ کو تلا بھلی دے دی۔ پر برہم پریشور کے پریم میں شو شو پکار کر اس نے گھر کو تیاگ دیا۔ پھر اس



دیوی نے مہاتما یوگیشور شری سدا مالو کو گورو دھارن کر کے اُس سے  
گورو اپدیش بھی لیا۔ گورو اپدیش کی سادھنا میں نرسر تپسیا کرتے  
کرتے پر مہ تیاگی ورتی بن کر سنسار کے اور نہ کوئی بدھی اور نہ  
کوئی ہوش ہی رہا اور ایک دیوانے کی طرح ہنگی ہی پھرنے لگی۔ نیچے  
اس دیا گل جان کر اس کے اوپر مٹی اور پتھر پھینکنے لگے اور انجان  
آگیا نی پرش اس کو بڑا بھلا کہنے لگے تب کچھ بزرگوں نے ہل کر  
پدمادتی کو سمجھانے کی کوشش کی کہ ماما اپنے بدن کو ڈھانپ لو  
تاکہ لوگ آپ کو تنگ نہ کریں۔ لوگوں نے بہت سے کپڑے لا کر  
بیچھا نہ چھوڑا اور اصرار کرتے رہے کہ ماما دستردھارن کرو۔  
کہتے ہیں کہ پھر اُس نے اپنے پیٹ کو بڑھا کر کھینچا اور پیٹ کے  
چمڑے کو مشک کی طرح لمبا کر کے لٹکا دیا اور اپنے آپ  
کو اُسی سے ڈھک دیا۔ اس طرح کی پیٹ کو کشمیری زبان میں  
'کن' کہتے ہیں۔ کچھ دنوں کے بعد جب وہ پورن لوگر بکھٹ بن  
گئی اور داکھ سیدی ہو کر اس کے امرت روپی داکھ شیدوں  
سے بڑے بڑے رشوں کو گیان آنے لگا۔ پھر اُس وقت کے  
مہانو بھاؤ تنووت رشی لوگ اس کو بہت ادب بھی کلا کی جان کر  
لوگ ایشوری اور ل ایشوری کر کے پکارنے لگے۔ ماما کلی شوری  
بھی اپنے داکھوں میں اپنے آپ کو نکل ایسا نام کر کے پکارتی  
ہے۔ اس ایشوری کے داکھ بہت اونچے کلا کے اُپشندوں اور  
شریمد بھگوت گیتا کے ساتھ بوڑھا کھاتے ہیں۔ مہریمان پرستوں  
کو اس ایشوری کے داکھوں سے ہی اس دیوی کا سارا جنم پھر تر

اور پچھلے جنم کے ابھی اس کا سب کچھ پتہ لگ جاتا ہے کہ یہ  
کس اُنچے کلا کی یوگ بکھٹ دیوی گذری ہے۔ اس دیوی کے  
امرت بھرے داکھوں کے انوار کرنے ہیں جن جن گرنھوں کے  
پر مان دئے ہیں وہ یہ ہیں۔ شریمد بھگوت گیتا شکر بھاش۔ گیتا  
رہسیہ بھگوان تلک۔ گیتا گیان ایشوری۔ اشٹا وکر گیتا (اُپشندیں)  
ایش۔ ایستری۔ پرش۔ تیر۔ چھاندو گیت۔ شویٹ شکر کہن۔ کچھ دلی  
مادو کیر۔ مندوک۔ تیج بندو۔ نادہ بند۔ جہو اور گر بھد اُپشند۔  
جہا بھارت۔ سانکھیہ شاستر اور ویدانت پانچلہ یوگ درشن۔ دہس  
بود۔ اپرو کھانو بھوتہ شکر بھاش [ دیوان حافظ فارسی۔ مثنوی  
مولانا روم۔ مثنوی یو علی قلندر۔ فارسی اور کبیر سبدا دلی کے  
پر مان دئے گئے ہیں۔ اپنے اپنے داکھ پر پورا نام لکھا گیا  
ہے امید ہے کہ ہندی اور انگریزی بھی جلدی شائع ہو جائے گا  
جو کہ اس وقت زیر نگین ہے۔

## انوارادک کی بھومکا

ہے اوم کار سُرُپ دیگن ہر تانگیش۔ ہے پر برہم پر ماتہ دیو  
آپ کو نمکار ہو۔ سویم آپ ہی اپنے کو جاننے والے ہو۔ ہے  
آتم سُرُپ پر برہم پر ماتہ دیو میں نیورہ کا دس آپ کو ہی  
یہ ہمہ بین کرتا ہوں آپ ہی شکل ارتھ اور بدھی کے پرکاش کرنے  
والے گیش ہو۔



نوبدلن - قریباً ۲۷ برس کی بات ہے کہ ایک مہاتما ساکھشات  
ایشور پوجن کا نام شری نیلہ کنٹھ جی تھا یہ کچھ بھی ان کے  
درشن کرنے کے لئے جایا کرتا تھا۔ ایک دن کی بات ہے کہ میرے  
من میں سدا آدائن روپنی دکھ کے نیورتن ہونے کی چٹا لگی  
تھی اچانک سوامی جی نے اپنا سر اٹھا کر میرے کان کے نزدیک  
لا کر تین دفعہ ہلکے سے یہ گیتا کے انگ نیاس والے مشید کہے  
(پارا شریہ دیچا سر دھم اعلیٰ) سوامی جی کے ہاتھ ہر بند سے یہ خد  
صننے پر مجھے شری بھگوت گیتا کے پڑھنے اور وچارنے کے لئے  
بھاؤ نا آتین ہوئی۔ میری بڑھائی کم تھی اس کر کے ہندی انوداد  
والے گیتا میں اور اپنشد اور کشمیر میں چھپے ہوئے ل واکیر پڑھنے  
آزمیہ گئے۔ ایک دن میں منہ دک اپنشد میں درنت دھیان یوگ  
کا انوداد پڑھتا تھا جس کا انوداد اس طرح کا ہے۔ اپنشد میں ورنٹ  
پر نو روپ مہان استر دھتس کو لے کر لپٹے ہی اپا بسنا دوارا  
تکھن کیا ہوا بان پڑھائے۔ پھر بھاؤ پورن چت کے دوارا  
رمن بان کو کھینچ کر ہی پریہ اس پر مہ اکھر پر شونم پر مشور کو  
لکھیہ مان کر مید دے۔ یہ پڑھتے پڑھتے مجھے ایشوری کا ایک  
ایسا ہی داکیر نیاد پڑا جو کہ ایشوری نے اسی دھیان یوگ میں  
بگڑنے پر یوگی کو سمجھایا ہے۔ وہ یہ ہے (اچوہ ہارنجہ پرنی  
کان گوم - ایک پھان پیوم - تھ راز دانے) یہ داکیر ہم نے  
ادھیائے ۳۔ داکیر ۱۱ میں دیا ہوا ہے واپس سے پڑھ کر سارا  
مجھ آجائے گا۔ اور بھی بہت سارے داکیر دیکھنے پر پتہ چلا

کہ مانا ایشوری نے یہ داکیر اپا سکوں اور سناری پرشول کے  
وہارنے کے لئے ہارم بار پر سنگ انوسار ارتھات دوسرے  
دوسرے شدید دل اور دوسرے دوسرے بہت درشتاوتوں میں  
اسی تو کا پریقین کر کے یہ سوچ کر کہ کسی بھی طرح سے وہ ادھت  
پر برہم پر ماتما۔ ان سناری ڈھت پرشول کے بدھ گوچر ہو کر  
سناری نیورتنی کا کارن ہو۔ یہ ادویت دیدانت کے داکیروں  
کا تیوئے گیان اپدیش ورن کہتے۔ پشچات میں نے انوداد  
کرنے کی اچھی سے ایشوری کے داکیر روزانہ پڑھنے آزمیہ  
کردئے۔ تب مجھے معلوم ہوا کہ ان داکیروں کا انوداد کرنا مجھ  
جیسے ایک بدھی منش کے یوگیتا کے باہر کی بات ہے اور یہ  
کوئی۔ سچ اور مجھ جیسے سادھارن منش کا کام نہیں ہے۔ پر تو  
انتہ کر نوں میں پورا دستور تھا کہ سیتہ سنگھ کے داتا بھگوان  
کرشن کر پا کر کے میرا مشور تھ ادش پورن کریں گے اب قریباً  
نوسال سے ان داکیروں کے انوداد کرنے میں کھوج کرتے کرتے  
اور اپنشد گیتا اور بہت سارے دوسرے پستکوں کے ساتھ جوڑ ملاپ  
کرتے کرتے جو جو داکیر ملے گا اس کو قلم بند کر کے اپنے اپنے ادھیائے  
اور سمجھ کے ساتھ ساتھ جوڑ کر لکھا رہا۔ ایسا کر کبھی ایک ایک  
داکیر کے پیچھے میں دن تاک سوچتے سوچتے لگ گئے۔ مگر کیا کیا وجہ  
یہ کام قدرت نے میرے کرموں کے لکیر دل میں لکھا ہے اس کر کے میری  
پرورنی اسی کے اور دن بدن بڑھتی گئی۔ ایسا سمجھیں کہ (آسمان بار  
امانت تو انت کشید۔ ترے قال بنام من دیوانہ زردند) دیوانہ حافظ



اور جھجھکیسے ال بدھی اکیکے سے یہ میرا ایسا پر شرم کرنا سمندر کو  
منٹھنا ہے اور ابھی کبھی دل میں ایسا بھی خیال آتا ہے کہ (آہم پنہ سدرس  
ناوہ چھس لمان) بیچ پر چھ تو یوگ (یشوری اپنے داکوں کا بھاؤ ارتھ  
آپ ہی جانتی ہے۔ دوسری بات یہ ہے کہ سور یہ پرکاش جیسے یوگیان  
اور دودان ہوا تو بھاؤ پنڈت جنوں کے ستمو کھ یہ میرا دیوا جیسا  
پرکاشت کرتا ہے۔ انوداک۔ گوپی ناتھ رہنہ

جیسے بھی پرستک چھپانے کا کوئی خیال نہ تھا کیونکہ اس کا بھی تیسرا ہاگ تیار نہیں ہوا۔  
مگر جیسے اپنے برادر پنڈت نند لال جی رہنے اور اپنے من کے لئے عزیمت دیر بدر جی  
کول مالک دیر طریک ایکسی امیر کول اور گرد ہاراج جو شری شری کا شری ناقد جی ہندو  
نے اس پرستک کے چھپانے کے لئے مجبور کیا میں شری رام چندر در لائبریرین  
ریسرچ ڈیپارٹمنٹ امرتسر کے امداد کا ہر دل سے شکر گزار ہوں۔ صاحب موصوف  
نے اس پرستک کے تیار کرنے میں بہت ہی ہمدردی اور خراہی سے مدد دی۔

اس کو نہتی میں جو داکہ بہت مشکل دیکھ پڑے ان داکوں کو  
پہلے لفظی ارتھ اور اس کے پیچھے دیا کھیاں میں پورا ارتھ سمجھایا گیا ہے۔

### سوامی امرا رام جی مہاراج سے عنایت شدہ

میں نے شری گوپی ناتھ جی کا کیا ہوا لکھنؤ شری کے داکوں پر ترجمہ یعنی  
ٹیکا سمیت انوداک کو بغور سنانی اواقعی پنڈت جی نے بہت محنت کی ہے اور  
حتیٰ الوسع کل داکوں کو شری مہر جی کے انکول بنانے میں بڑا بہترین کیا ہے جس کا  
میں دھنیہ وادینہ ہوں۔ اب ان داکوں سے لایہ اٹھانا بھکتوں اور سالکوں کا  
کام ہے جس کے لئے پنڈت جی نے بھی طرح سے پتھہ بردش کیا ہے۔

(آقا رام برہما جی۔ گوسانی گندم)

### پہلا ادھیائے

اومہی ادھ تے اومہی سورم  
اومہی ٹھرم پنہ پان  
انت تراوتھ نختی برسم  
توئے پرووم پرسم تھان (۱)

لکھنے کے (جو بھی کچھ یہ سارا برہما نڈ جگت ہے) سب کا آدہ  
کارن یہ ایک ادم کار سر سوپ برہم ہی ہے۔ اسی ادم کار تو برہم کو  
تو سے جان کر میں نے سادھنا بھی کی اور اپنے آپ کو بھی ادم ہی جان  
کر ٹھہرایا۔ اس انت ناشوان (سنا رکی سب کا منادوں) کو تیاگ کر پھر  
میرے کو ایک ہی نیت اونا شری برہم بنا سنے لگا۔ تب ہی پھر میں نے  
پرسم تھان (لکھتی کا دام) پر اپت کیا۔

برہما۔ سمپورن وید جس پر ہم پدکا یا رمبار پرتہ یادن کرتے ہیں اور  
سمپورن تپس پدکا لکھپیہ کرانے ہیں جس کو چاہئے والے سادھک گن  
برہمہ پرہمہ کا پان کرتے ہیں وہ پد میں نہیں سنگھپیہ سے بتلاتا ہوں۔  
وہ ہے اوم ایسا ایک اکشر یہ اکشر ہی تو برہم ہے اور یہ اکشر ہی  
پر برہم ہے اس لئے اسی ایک اکشر کو جان کر جو جس کو چاہتا ہے اس  
کو وہی مل جاتا ہے۔ یہی آتم آلمین ہے۔ یہی سب کا انتم آشری ہے  
اس آلمین کو بھلی بھانتہ جان کر سادھک برہمہ نوک میں ہما نیوت ہوتا



ہے۔ یہ اپدیش میراج خچر کیڈ ٹ کو کرتے ہیں۔ (کچھ اپنشد ۱۵/۱۷)

گورس پر۔ دتر ہم سا سہ لے  
بیس نہ کنہہ و تان۔ کس کیاہ تاؤ  
پر تان۔ رتر تان۔ کس تان  
کنہہ کس۔ کس کیاہ تان دراؤ (۲)

گورو مہاراج سے ہم نے ہزار بار ارقھات انیک بار پوچھا جس کو کچھ بھی نہیں کہتے (ارقھات جس برہم کا سروپ جلتے کہنے اور ابھو کرنے میں کچھ بھی نہیں آتا) اس کا یا نام ہے۔ انیک بار پوچھتے پوچھتے تھک گئی اور مار گئی۔ اس برہم کا سروپ کچھ بھی ابھو میں نہ آتے سے اس کر کے گورو کے چھوٹے رہنے میں سے ہی کوئی متو بھاؤ دیا کر کے لئے نکلا۔

دیوانت سوتر ۱۱۔ میلے ۳۔ یاد۔ ۲۔ منتر ۱ میں ایک ایسی ہی لکھا آئی ہے یہ کہ برہمچاریا بانٹکھ نے اپنے گورو دھرشے ہم سے پرشن کیا۔ مہاراج مجھے کہا کہ۔ بتلا میں کہ برہم کس کو کہتے ہیں۔ تب ہرشی باہمنہ کچھ بھی نہیں بولے۔ بانٹکھ نے پھر بھی وہی پرشن کیا۔ تب بھی گورو کچھ نہ بولے جب ایسا ہی انیک۔ ہوا۔ تب گورو مہاراج نے بانٹکھ سے کہا۔ اے میں تیرے پرشنوں کا رتھی سے دے رہا ہوں۔ پر متو تیرے سمجھ میں آتا ہی نہیں۔ میں کیا کروں۔ برہم سروپ کسی پرکار سے بتلایا نہیں جا سکتا۔ اس لئے شانت ہو۔ رھتات چپ رہنا ہی سچا برہم کہن ہے۔

پرمال۔ جو برہم نہ جیتے۔ نہ پر گیا والا گیان سے جلتے میں آنے والا ہے اور جو نہ باہر پر گیا الہ سے نہ دونو اور پر گیا والا ہے نہ پر گیا نہ گنہ ہے۔ نہ جاننے والا ہے۔ نہ نہیں جاننے والا ہے جو اور شٹ ہے۔ جو دو بار میں نہیں لایا جا سکتا۔ کچھ نے میں نہیں آ سکتا۔ جس کا کوئی لکھن نہیں ہے جو چیتن کرنے میں نہ آ سکتا جو بتلانے میں نہیں آ سکتا۔ ایک ماتر آتمہ ستا ہی جس کا سار۔ جس پر کار گیا فی پرشن ملتے ہیں۔ دہی پر ماتا ہے اور دہی ہلا۔ (مانڈوک اپنشد منتر ۱)

گورن دینم کو نوئی  
نمبرہ دینم اندری آترن  
سودی مہ لکھ گور دا کھ تر درن  
توئے ہیو نم تنگئے نسرن (۳)

گورو مہاراج نے مجھے ایک ہی (ادم کار کا) شاہد کہا اور باہر سے اندر گھسنے کے لئے کہا دہی گورو کا اپدیش مجھ سے کے لئے دا کھ اور وچن بن گیا تب ہی میں (دیوانہ جیسی بن کر) تنگی ہو۔ نہ چھنے لگی

ویا کھیا۔ گورو مہاراج نے مجھے ایک ہی ادم کار شہا تمہ کر سادھن کرنے کو کہا اور چکھشو (آنکھ) بندریوں کو باہر کا بشیوں سے ٹوٹا کر اپنے ہی اندر انتر آتا کو کہنے کے لئے گھسنے کہا۔ دہی گورو کا اپدیش مجھ تل کے لئے دا کھ اور ران ارقھات والی اور چپ بن گیا۔ تب ہی ارقھات اسی ادم کار کے تر نہ بیان کرنے میں ایک دیوانہ



جیسی بن کر پر ماتہ کے پریم میں تنگی ہی نہ چنے لگی۔

برمالن - سویم پرکٹ ہونے والے پریشور نے سارے بندریوں کو باہر کی اور جانے والی ہی بنایا ہے اس لئے منشی بندریوں کے دوارا باہر کی دستوں کو ہی دیکھتا رہتا ہے۔ انتر آتا کو نہیں دیکھتا۔ کسی ایک بھاگہ شالی بدھی مان منشی نے ہی پریم پرکٹ کو پانے کی اچھیا کر کے چکھشو آدہ بندریوں کو باہر کی دیشیوں کے اور سے لوٹا کر انتر آتا کو دیکھا ہے (کچھ آئندہ ۱-۲)

سبند دود کیاہ زانہ یس نو بنے

غملی جامہ ل ولب تنے

گھرہ گھرہ فیرس ز بیم کئے

دیوٹھم نہ کا نہہ تہ پلنہ کئے (۳)

اس درد و غم کو (ارتھات پریشور پراپتی کرنے کے درد و غم کو) وہ کیا جان سکتا ہے جس کو کہ اس کا کوئی درد و غم بن کر ہمیشہ آئے اور ہو اس غم کے دستہ ہی میں اپنے تن ارتھات انتہ کر لوں میں ہیں کر گھر گھر جگہ جگہ پھرتی رہی۔ ہر ایک جگہ جگہ یا بوسی کے پتھر ہی پتھر پڑے (کون سے پتھر) میں نے کہیں بھی کسی منشی کو نہیں دیکھا کہ جو اپنے (ادھیائے چار) میں لگا ہو۔

برمالن (از دیوان حافظ) دود آہ سبند سوزان من سوزن این افسر وگان خام را

حرم راز دل شیدا ی خود کس نے بیتم ز خاص و عام را  
ارتھ - میرے سینے (ارتھات یوگہ بل کی چھاتی) میں پریم روپی آگ کے دھوئیں سے نکلی ہوئی آہ کو۔ اس سنسار کے خام جماعت مورتھ منشوں نے جلا ڈالا (کیوں جلا ڈالا) یہ کہ اس سنسار کے خاص و عام منشوں میں کسی ایک کو بھی نہیں دیکھتا ہوں کہ جو اپنے راز دل کا غم ہو اور اپنے آپ کے ادھیائے چار میں لگا ہوا (شیدا) مست ہو۔

اگلے دو دایکوں میں یوگ ایشوری اپنے جنم لینے کے کارن کو کپاس اور کپاس پھول کے درشتانت میں بتا کر اپدیش کرتی ہے۔

لُل بو درالین کلبہ پوشہ سچی

کا رتہ دولن کرتم۔ مڑی گتھ

تہیہ بلیہ کھار غم زاد رچ تا تہیہ

دور دانہ گیم الہانزی لچھ (۵)

۱. میں لُل کپاس پھول تلاش کرنے کے سوچ میں نکلی ۲۔ بولا نکالنے والے چرتھی نے اہ پھر دھنی نے جگہ بہت ہی پامال کر کے درگتی کر ڈالی (۳) جب کہ کانتی والی نے جگہ باؤبک تاروں میں کات کر اُد پرستہ چڑھایا (۴) پھر جولا ہی کے دکان پر میری لائیں نیچے ہی لٹکتی رہیں۔

۵. دیا کھیا۔ (۱) میں لُل کپاس روپی اپنے کپاس پھول تلاش کرنے کے سوچ میں نکلی (ارتھات میں لُل اپنے سوجاؤ روپی من اور پانچ سوکشم بندریوں کے آسکتی میں بندھی ہوئی پر و جنم کے سنکاروں والے سخت کرموں کے بھوک کرے کے لئے جنم دھارن کر کے گر بھڑ سے نکلی (۲) اور پھر







سبند

دیکھ کر سے داہہ نہ تر دیکھم  
پران چور رستم چہ دیو تنس دم  
بر دیو چہ کو کھہر اندر گندم  
اوم کے چو یکہ تو تنس بم (۷)

میں نے اپنے شریر روپی مکان کے دیکھتو آدہ بندریوں والے  
کھڑکیاں اور دروازے بند کئے اور پران روپی چور کو راتھات پرانوں  
میں چھٹے ہوئے انتر آتما پر میثور کو اپنے دھیان میں پکڑا اور اس  
دھیان سرور پر میثور کو پیرانوں کے نیرودھ کرنے پر ایسا کر کے ٹھہرایا  
اور اپنے ہر دے کی کوٹھری کے اندر (ساتھ لکھیر مان کر) باندھا اور پھر  
اوم روپی چاہک کے زور زور سے راتھات ہلے لیے سانسوں کے ٹپکتی  
سے اوم کے چاہک مارتی گئی۔

پرمان۔ تلوں میں تیل۔ دہی میں گھی۔ ارنیوں میں انگلی۔ سوتوں میں  
جل۔ جس پر مار پھینچے پڑتے ہیں۔ اسی پر کار وہ پرماتما اپنے ہر دے میں  
چھپا ہوا ہے۔ جو کوئی عبادت کسا اس کو ستر کے دوا را مع م رومیا تب  
سے دیکھتا رہتا ہے اسی کے دوا را وہ گرہن کیا جاتا ہے (غزوت شستر  
پیشند ۱۵) شریر کے دروازوں کو بند رکھنا ہی ادھیائے دیکھ ۳ میں ادرا دم  
کے چاہک کو ادھیائے ۳ دیکھ ۱۱ میں دھش اور بان کے پرماتموں میں پرماتموں

سبند

نل بولوسس تھانڈان تہ کاران  
حل مہ کر مس ر سنے ششی  
وچھن بیو تنس تار و تنس بران  
مہ تہ کل گنیہ زہ زو کس تنی (۸)

میں نل (اپنے انتر آتما کو) دھونڈھتے دھونڈھتے اور کھوجتے کھوجتے  
(راتھات تپسیا کرنے کرتے) تھک گئی (سادھنا کے مارگ و لیگن کرنے میں) سیکڑوں  
ہی اس بندریوں کے راگ آتما آسکتوں کی نیورنی کرتے کرتے جا کرتی گئی  
(مارگ اوپر پہنچنے پر) جب کہ میں اس کے طرف راتھات انتر آتما کے طرف  
دیکھنے لگی تو میں نے اس طرف کے داروں میں بندش پائی۔ مجھے اور بھی  
زیادہ پریم کی چاہ بڑھتی گئی۔ پھر میں اسی چاہ کے بموجب وہیں پر ادھیان  
دوارا (تاکتی رہی۔)

سبند  
نل بہ ژالیں سو منہ باغہ برس  
وچھن ششوس شیکت میلٹ تہ داہ  
تہ تہ لے کو رستم امرتہ برس  
زندے قمرس تہ مہ کرہ کیاہ (۹)

میں نل درشت دھم سے (دھیان یوگ میں سخت ہو کر اپنے ہر دے  
روپی بارغ کے دروازے میں) پرماتما کا چنن کرنے کے لئے گھسی۔ میں نے  
وہاں ششوس کے ساتھ تنکھتی راتھات جیو آتما کے ساتھ پر کرتی ملی ہوئی دیکھ  
پائی واہ (یہ ایشور کی ادھوت قایا) میں نے تو وہاں اپنے آپ کو پر ماتم  
روپی امرت کے ساگر میں ہی لئے کر دیا (ایسا کر اس پر کرتی کے گنوں کا  
کچھ بھی آپ بھوک نہ کر کے) میں تو زندہ ہی (میں پر ماتما کے پریم میں ہوں گی  
تو پھر مجھے یہ پر کرتی کیا کرے گی) راتھات ایسی ادھیائیں یہ پر کرتی  
کہاں سے وہ کہاں کا کر مہ بندھن لاکر آئیں کرے گی۔

پر مال۔ بندش پر کرتہ میں سخت ہو کر پر کرتہ کے گنوں کا آپ بھوک  
کرے۔ پر کرتہ کے گنوں کا یہ سنیوگ ہی پرش کو بھلی بری یونیوں میں



جسم لینے کے لئے کارن ہوتا ہے (گینٹا ۱۲) اور میں تاسے دیکھنے والا پیش  
جب جان لیتا ہے کہ پر کر کے گھول کے سوائے دوسرا کوئی کرتا نہیں  
ہے اور جب پر کر کے گھول کے سوائے پر سے پر مارتا تو کوئی پر جان جاتا  
ہے تب وہ جھڑ پریشور کے سر پہ نہیں ہی مل جاتا ہے (گینٹا ۱۹)

پیم لوبھ تہ من مت مد موروں  
تیمے مارت تہ لوگن داس  
پیم سہزہ ایشور گوروں  
تیمے سوڑی وندن ساس (۱۰)

جس کسی جتن شیل منش نے لوبھ اور من کا اہم بھاؤ اور غور دان  
سب شتروں کو مار ڈالا اور ان سب کو مار کر اپنے آپ کو داس کی طرح  
دیکھ کر جیسا) بنا ہوا رہا اور پھر جس کسی نے اپنے اندر کے اندر آتما پریشور  
کو (نہیجے آتما کی مدد سے) کھوج ڈالا۔ اسی نے پھر (دشال سورگ شکھ  
آبادہ کے کامنائیں) سب کچھ مٹی اور راکھ کے تلیہاں لیا۔

پیم تہ بیان پیم سٹوئی مون  
پیم پیموئی مون دن کھورات  
پیم سٹوئی آڈے من  
تیمے ڈیو پیم سوڑ گور نا تھ (۱۱)

جس کسی منش نے دوسرے سب پرانیوں (ارتھات منش آبادہ پیش  
کچھ سب جیو داروں) کو اور اپنے آپ کو ایک ہی آتما سر پہ میں سم بھاؤ

سے جان کرمان لیا اور پھر جس کسی نے دن اور رات (ارتھات شکھ۔ دکھ۔ شیت  
ڈش۔ مان ایمان آبادہ) ایک ہی جیسا مان لیا اور پھر جس کسی کا من  
دوئی بھاؤ تاسے رہت ہو گیا۔ اسی نے پھر پر مارتا اور دوتاؤں کے گوروں  
پریشور (آتما تو) کو دیکھ پایا۔

پیم مان۔ جو لوگ ایکوت بدھی من میں رکھ کر سموروں پرانیوں میں  
سخت ہو جائے وہ سب کو بھٹکے۔ وہ لوگ سب پر کاہ سے درتا ہوا  
بھی پر مہ پر روپ جھڑ پریشور میں ہی درتا ہے۔ ہی ارجن شکھ ہو یا دکھ  
اپنے سامان دوسروں کو بھی ہوتا ہے جو لوگ آتما درشت سے سب پرانیوں  
میں سم بھاؤ رکھ کر دیکھ لگے وہ لوگ پر مہ دکھ کرشت ارتھات اوچھا  
مانا جاتا ہے (گینٹا ۳۱-۳۲)

میتھیا۔ کیرٹ۔ آست تروم  
منش کر م سوئی اپدیش  
زنس اندر کیول تروم  
انس کھنس کھنس جھم دویش (۱۲)

میں نے میتھیا چار۔ کیرٹ اور جھوٹ بولنا پر سب کچھ تیاگ دیا۔ یہی  
اپدیش اپنے من کو بھی کر دیا سب کے سموروں پرانیوں میں کیول اسی پر مارتا  
کو سخت مانا (اسے اوستھیں) کچھ ان کھانے میں کون سا رویش  
ارتھات دکھ کا میتھ ہو گا۔

پیم مان۔ جو بڑا آتما (آتما آبادہ) کریم بندریوں کو روک کر  
میں سے بندریوں کے وشیوں کا چنن کیا کرتا ہے۔ اسی میتھیا چار ہے



(گیتا ۳) اگر یہ اُن نہ کھا کر نرمار ی پرش کے دشنے چھوٹ جاویں۔ مگر اُن ویشیوں کا رُس ارتھات چاہ نہیں چھوٹتی۔ پر تو یہ برہم کے ایکوت کا اچھو ہونے پر دشنے اور اُن کی چاہ بھی چھوٹ جاتے ہیں (گیتا ۵۹)

یہ یہ کرہ سوئی آرژن  
یہ رستہ اوڑ ریم تی منتھر  
یہ یہ گنگم دیہس پرہ ثری  
سوئی پرہ مشیون منتھر (۱۳)

جو یہ چھوٹ میں (پرورث اور نورث روت) کوئی سا کرم کرتی ہوں گی  
(یہ سمجھو کہ) وہی میری پر کر تہ سو بھاؤ (نہ کر تہ روت) یو جا بن گئی  
جو جو بھی کچھ میرے رستہ میں سے (ارتھات) میں چھشو (یہ تہ)  
گیان بندریوں کے راگ سے) شجھ اور ایشجھ داستانیں اتیں ہوں گی  
(یہ سمجھو کہ) وہی میرے پر کر تہ سو بھاؤ میں منتھر پڑ گیا۔ جو جو بھی  
نچے اس دہیہ میں سنار یا پر مار تہ کا بھاؤ لگ جائے گا (یہ سمجھو کہ)  
وہی پرہ پشو پرہ برہم کے کھوج کرنے کا منتھر بن گیا۔

برہمان۔ (کرم۔ اکرم اور وکرم کا ہمنیہ) کرم کیا ہے اور اکرم کیا  
ہے۔ اس کرم کے دشنے میں بڑے بڑے بڑے بڑے بڑے ہو چکے  
ہیں۔ اس لئے میں چھو وہ کرم اور اکرم متلاؤں گا جس کو جان کر تو  
سنار سے نکت ہو جائے گا۔ کرم کی گتہ نہیں ہے۔ اس لئے یہ جان  
لینا چاہیے کہ کرم کیا ہے اور سمجھنا چاہیے کہ وکرم و پرہیت کرم) کیا

ہے اور یہ بھی جان لینا چاہیے کہ اکرم (کرم کر کے نہ کرنا) کیا ہے  
کرم میں اکرم اور اکرم میں کرم چھو دیکھ پرتاب سے وہ پرش  
سب منشوں میں گیکانی اور وہی یوکر یکھت اور سب کرم کر کے  
والا ہے (گیتا ۱۶-۱۸)

نشو نشو کران ہمسہ گتھ سوریت  
روزت دودہ لاری دن کہو رات  
لاگہ رست ادویس من کرت  
نلس نیت پرہ سن سور گور ناٹھ (۱۴)

جو کوئی مش پر ایک سانس کی گتی میں نشو نشو جب کی نامہ سمکنا  
کر تہ ہے اور دن رات گرسنت آشرم آتیادہ و دہار میں شجھ اور ایشجھ  
کرہ بندھن کے کسی لاگ کے بغیر (پانی میں کل کی طرح نرٹ) اور اپنے من  
کو دوی بھاؤ نلے سے ہٹا کر (نرم شانت آتما بن کر) ہے۔ اسی منش کر  
برہما آدہ دیوتاؤں کے گورو پرہ برہم پرہ پشو ہر وقت پرسن ہتے ہیں۔

اندری آئیس چندری گاران  
گارن آئیس ہمسہ  
ثیئے نارن ثری اٹھ دارن  
ثیئے مارن ایم کم دہیہ (۱۵)

میں اپنے اندر (دھیان یوگ میں سہت ہو کر) سب کے پرہا شک  
چند رمال کو کھوجتی آئی (کس کو کھوجتی آئی) ہر ایک کے بیتر سہت



ایک ہی جیسے (آتم سرور پریشور) کو چھوٹی آئی ہے یہ برہمن پریشور  
(دیکھئے پرگیا ہوا) کہ تم ہی سرور دیا ایک نارائن ہو اور تم ہی بکھشک  
بن کر ہاتھ پھسائے ہو اور تم ہی کال رڈ بن کر سب کو مارتے ہو  
ہی پرمانن یہ ہتھاری یوگہ بابا کے گیت چمنکار کیسے ادھیوت ہیں۔  
پرمانن - وہی آگنہ ہے۔ وہی سورہ ہے۔ دایو اور چندرما پرکاش  
یکھت نکھنر اینادہ وہی ہے۔ وہی جل وہی پرزائینہ اور برہما ہے  
ہی پرمانن تو ہی یروش اور تو ہی استری ہے۔ تو ہی کمار اٹھا کمار  
ہے تو ہی بوڑھا ہو کر لکڑی کے سہائے سے چلتا ہے۔ تنھا تو ہی  
دیوٹ سرور پرکٹ ہو کر سب اور مکھ دالا ہو جاتا ہے ہی پروردہ  
پریشور۔ تو ہی تیل دون پتنگ اور ہرے رنگ کا اور لال آنکھوں والا  
پاکھی ہے اور میگ وسنت آتیادہ اور سفہ سمد رورپا ہے۔ ہی  
پریشور تجھ سے ہی سیدورن لوگ اپن ہوئی ہیں تو ہی آئادہ پرکرتوں  
کا سوا ہی اور دیا ایک روپ سے سب میں دیما ہے (شویتا شتر  
لپیشد ۱۲/۲)

اے یوندے زامے زوے  
نتھئی کرے ستان تر تن  
دیر دیر سنوئی آسے  
نشہ چھوئی تہ پرزہ نادتن (۱۶)

(ہی ہے وہ سرور دیا ہی پریشور) جو ہنستا ہے۔ چھینکنا ہے۔  
انگڑا بیاں لیتا ہے اور کھانستا رہتا ہے اور دن رات (من کے

منکھ وکھ رڈی خیالات کے) تیرھوں میں ستان کرتا رہتا ہے۔ اور  
سال کے سال بھر پرکٹ ہی رہتا ہے وہ تو ہتھ پائے میں ہی ہے  
اُس کو پچھان تو لو۔  
پرمانن - ہم راج پوکتو کو کہتے ہیں جس کے اوگرہ سے منش مشبدول  
کو۔ سپریشوں کو۔ رورپ سمدائی کو۔ رس سمدائی کو اور استری پر سنگ آتیادہ  
شکھوں کو انھو کرتا ہے اور اُنہی کے اوگرہ سے یہ بھی جانتا ہے کہ یہاں  
کیا شیش رہ جاتا ہے۔ یہی ہے وہ پرمانا جس کے دیشے میں تم نے پوچھا  
تھا۔ سپن کے درشیدوں اور جاگرت اوتھا کے درشیدوں کو منش جس سے بار  
بار دیکھتا رہتا ہے اُس سرورہ سریشٹ سرور دیا ہی سب کے ہتھ کو جان کر  
منش شونک نہیں کرتا (کچھ آفیشد ۱۲/۳)

سبند  
بیت بوگیس تہ اوکس سو  
تہ ڈر بوٹھم مٹول سو  
کنش ڈر ہنیت دول سو  
سوئی لے سو تہ یو کوہہ کل (۱۷)

جہاں جہاں بھی ہیں کہیں گئی دہاں دہاں وہی (یہ برہمن) تھا اور دہاں  
دہاں میں نے اُسی پتا رڈی (یہ برہمن) کو دیکھا۔ وہی جو کانوں میں گندول  
ڈالے ہوئے ہیں یہ کہ یہ ساٹا جگت وہی ہے تو میں کون اور کہاں کی  
(دوسری) کل آئی۔

پرمانن - یہ امرت سرور پر برہمن ہی سامنے ہے۔ یہ برہمن ہی نیچے  
ہے۔ یہ برہمن ہی دائیں اور یہ برہمن ہی بائیں اور ہے یہ برہمن ہی نیچے



تھکا اُد پر کے ادر پہلا ہوا ہے۔ پر جو سمیڑل جگت ہے۔ یہ سب کا سب  
برہم ہی ہے (منڈوک اپنشد ۲-۲)

## دوسرا ادھیائے

۱۴

اڈئی اکوی اچھر پرم  
سوئی مالہ رُم وندس منتر  
سوئی مالہ کنہ پچھر پرم تہ رُم  
اسس سانس تہ سٹینس سون (۱)

اوم ہی ایک اکھشر کو میں نے پڑھا۔ ہی تات اُسی کو میں نے  
اپنے سو بھاؤ میں پکڑا۔ ہی تات پھر اُسی کو میں نے پتھر پر گڑ دیا  
اور سجا دیا۔ میں تو راکھ ہی تھی اور پتھر سونا بن گئی۔

دیا لکھیا۔ اوم اس ایک ہی اکھشر کو میں نے تھو سے جان کر پڑھا  
ہی تات اُسی ایک اوم کار سر وپ پر برہم کو میں نے ادھیج رنی درتی  
سے اپنے پر کرتہ سو بھاؤ انتہ کر نوں میں دھارن کر کے پکڑا۔ ہی تات  
پھر اُسی ایک اوم کار کو میں نے لپیچے پوروک درڑھ کر کے بارم بار وویک  
ابھیا س رُوپی پتھر پر گڑ دیا اور پئے تاکر کے ستو بھیمان کیا۔ میں تو  
راکھ ہی تھی۔ اُسی ایک اوم کار کے پختن مانر کرنے پر راکھ سے بدل  
کر سونا بن گئی۔

پرمان۔ (اوم) یہ پرمانا پر نو کے ادھیکار میں ورت ہونے کے

کارن نین ماتراؤں سے یکھت ادم کا ہے ॥ اکار ق امار۔ ॥  
مکار۔ یہ تین ماترائیں ہی تین پاد ہیں اور ماتراؤں سے بہت ادم کار  
کا چوتھا پاد ہے۔ ادم کار کی پہلی ماترا ॥ اکار ہی سلسلے جگت کے نام  
سے دیا ہے ہونے کے کارن ادر پہلا پاد ہونے کے کارن جاگرت کی  
بھانیتہ سٹھول جگت رُوپ شریر والا ویشوانر نامک پہلا پاد ہے۔ ادم کار  
کی دوسری ماترا ॥ اکریشٹ ارتھات ॥ سے سریشٹ ہونے کے کارن  
سوین کی بھانیتہ سوکشم جگت رُوپ شریر والا۔ تیس نامک دوسرا پاد  
ہے۔ اوم کار کی تیسری ماترا ॥ مکار ہی مپ کرنے والا ارتھات جانتے  
میں آنے والا ہونے کے کارن اور ولین کرنے والا ہونے کے کارن سو شتی  
کی بھانیتہ کارن میں ولین جگت ہی جس کا شریر ہے۔ پر اگتہ نامک تیسرا  
پاد ہے اُسی پر کار ماترا سے بہت ادم کار ہی وودھار میں نہ آنے  
والا پر پچ سے اتیت۔ کلان مئے ادویت پورن برہم کا چوتھا پاد ہے  
جو اس پر کار تھو سے جان لیتا ہے وہ لپیچے کر کے اپنے ہی آتم ردارا  
اُس پر برہم پرمانا میں ہی مل جاتا ہے (مانڈوکیہ اپنشد منتر ۸/۱۲)

سمند سوچس نہ سانس پرس نہ مرس

سوچس مہ لپہ چھو پنوسی واکھ

اندرم گڑ کار رپت تہ ووم

ژرپت نہ دیو تمس تنی چاک (۲)

میں نے اپنے آپ کو ایک سوئی کے نوک جتنا بھی کسی ساعت  
بال بھر پچھا نہ چھوڑا۔ وہی یوگ کا مَس جھل کو اپنے ہی واکہ ہیں



(ایسا کرنے پر) میں نے اپنے اندر کا اندھکار بکڑ کر اُتارا اور کاٹ کر  
وہیں پر ساتھ ساتھ ٹکڑے کر دیئے۔

دیا کھیا۔ میں نے ایک سوئی کے نوک جتنا بھی کسی ساعت پر مانتا  
کو پراپت کرنے کے اُدیش سے ادم کار کے چپ اور دھیان ددار اپنے  
آپ کو بال بھر بھی پیچھا نہ چھوڑا۔ وہی لوگ دھارنا کا مس ارتھات  
پر برہم کے آند کا سرور مجھ ل کو اپنے ہی داکھ وانی کا جب ہے۔ اس  
طرح سے تن منے ہو جانے پر میں نے اپنے اندر کا بندیرہ روپی راگ  
آتمک آسکیوں کے اندھکار کو بکڑ کر ارتھات اچھی طرح سے جان کر اگیان  
اندھکار کے مد سے اُتارا اور پھر ان بندریوں کے راگ آتمک سبھاؤں کو کاٹ  
کر وہیں پر ساتھ ساتھ ٹکڑے کر کے بھسم کر ڈالا۔

برہمان۔ بن بن روپوں میں اپن ہوئی بندریوں کی جو پرتھک  
پرتھک سنب ہے جو ان کا اُدے اور لے ہو جانا سو بھاٹے اُسے اچھی  
طرح جان کر اور آتما کا سروپ اُس سے الگ جان کر دبیر پرش کسی قسم  
کا شک نہیں کرنا (کچھ اُنشد ۲-۳)

سمند ۲۰  
دمہ دمہ من ادم کار پر نو دم  
پائے پران پائے بو زان  
سو اہم بدس اہم کو تم  
نہ مل بو دائرس پر کاشن تھان (۳)

میں ہر وقت اپنے من کو ادم کار ہی پرٹھاتی رہی۔ آپ ہی پرٹھتا  
بھی ہے اور آپ ہی سُننا بھی ہے سو اہم بد میں سے اہم کو گلا دیا۔

تب ہی میں مل پر کاش کے ستھان پر پہنچ گئی۔

دیا کھیا۔ میں ہر وقت شاس، ادشاس کے ساتھ ساتھ اپنے من  
کو ادم کار ہی پرٹھاتی رہی۔ سمجھو کہ یہ من پر ماتم روپ سو اہم  
شید میں ہی لیں ہو کر آپ ہی پرٹھتا بھی ہے اور آپ ہی سُننا بھی ہے  
اس طرح کی سادھنا کرتے کرتے میں نے اس سو اہم بد میں سے اہم کو  
گلا دیا۔ ارتھات سو + اہم میں سے اہم گل کر سو۔ پر برہم ہی سچ رہا۔  
تب ہی میں مل پر کاش کے ستھان تکتی دام پر پہنچ گئی۔

برہمان ۲۱  
فارسی  
دم بدم دم را غنیت دان و ہدم شد بدم  
داتف دم باش دم را سچ دم بیجا دم  
سو اہم بد میں سے اہم کو گلا دینا۔ ادھیائے ۸۔ داکہ ۱۲-۱۳  
میں پرٹھیں۔

سمند  
دما دم کرمس دمن مالے  
پر زلیوم دیپ تہ سنے یتم ذات  
اندرم پر کاشن رنبر تر اھو طم  
بگٹہ مرا طم تہ کرمس تھف (۴)

میں (دما دم) ارتھات کرم نام پرانا نام کے پے در پے سانسوں سے  
(ادم کا جب) اُچاران کرنے لگی۔ ایسا کرنے پر میرے میں دیپا پر جلت ہوا  
اور مجھے اپنی ذات معلوم ہوئی اندر کا پر کاش باہر چھٹک دیا۔ اندھیرے  
میں ہی دیکھ پایا اور بکڑے ہی رکھا۔

دیا کھیا۔ میں پر مشور کو پراپتی کرنے کے لئے (دما دم) ارتھات پران  
رپان گتی کو روک کر یعنی کرم نام پرانا نام میں ت پر ہو کر پے در پے



سانسوں کی بکھتی سے اوم کار کے جب کا اچارن کرنے لگی۔ ایسا کرنے پر میرے بیتر آتم تو کا پرکاش سے دیکھ پر جلت ہوا اور مجھے اپنی ذات ارتقا اپنا سروپ پرکٹ ہو گیا اور پھر میں نے اپنے اندر کا چھپا ہوا آتم پرکاش باہر چھٹک دیا۔ اندھیرے میں ہی پر نام سروپ برہم تو کو دیکھ پایا اور پر م لایہ جان کر اُسے پکڑے ہی رکھا۔

پر مان۔ اپنے شریر کو نیچے کی ارتقا اور اوم کار کو اوپر کی ارتقا کر دھیان کے ددار۔ نر نر منتھن کرتے رہنے سے سادھک چھٹی ہوئی آگنے کی بھانتر ہر دی میں تھت پر م دیو پر مشور کو دیکھے۔ تلوں میں تیل دی میں گھی۔ سوتوں میں جل اور ارنیوں میں اگنی۔ جس پر کار چھٹی رہتی ہے اسی پرکار وہ پر ماتا اپنے ہر دے میں چھپا ہوا ہے جو کوئی سادھک اس کو سند کے ددار اسم یم دھوپ تب سے دیکھتا رہتا ہے۔ اسی کے ددار وہ پر مشور گرہن کیا جاتا ہے (شوبہا شترا پشند ۱۵/۱)

جیوں تل ماہیں تیل ہے جیوں چمک میں آگ  
تیرا مالک تجھ میں جاگ سکے تو جاگ (کبیر)

سبند  
اوم کار بلہ لیمہ ادغم  
دوسری کر م م پینن یان  
شہ دتہ ترا دت تہ ست مار گہ ر م  
تیلہ لیل یہ داتس پرکاشن تھان (۵)

جب کہ میں نے اوم کار کو اپنے ساتھ لے کیا ایسا کہ اپنے آپ کو بھسم ہی کر ڈالا۔ چھ دن سے طے کر کے ست مارگ پر پکڑا تب ہی میں تل

پرکاش کے سھان پر پہنچ گئی۔

دیا لکھا۔ جب کہ میں نے تپیا کرتے کرتے اوم کار سروپ پر برہم کو اپنے آپ میں لے لیا۔ ایسا کر یوگ مارگ طے کرتے کرتے میں نے اپنے آپ کو بھسم ہی کر ڈالا۔ ایسا کرنے پر یوگ کی چھ بھو بکاؤں کو طے کر کے پھر ساتویں بھو بکا برہمانڈ کے اوپر پہنچ کر پر مشور برہم تو کو دیکھ کر پکڑ لیا۔ تب ہی پھر میں تل پرکاش کے سھان ملتی دام پر پہنچ گئی۔

پانس لاگت روڈک مہ ترہ  
مہ ترہ مہ ترہانڈان لہ ستم دھوہ  
پانس منتر بلہ ڈیو ٹھک مہ ترہ  
مہ ترہ مہ ترہ پانس دیو تم ترہوہ (۶)

میرے سے تم اپنے آگے (مایا روپ) پردہ لگا کر چھپ کر رہ گئے۔ مجھے تمہارے کو ڈھونڈتے بہت دن بیت گئے جب کہ پھر میں نے اپنے ہی آپ میں تم کو دیکھ پایا۔ پھر میں نے تمہارے کو اور اپنے آپ کو مشابہت دیکر ٹوٹ ڈالا۔

دیا لکھا۔ ہی پر مشور تم اپنے آگے مایا روپ برہم کا پردہ لگا کر میرے سے گیت ارتقا چھپ کر رہ گئے۔ مجھے تمہارے کو ڈھونڈتے بہت دن بیت گئے۔ جب کہ پھر میں نے اپنے ہی آپ میں تمہارے کو دیکھ پایا۔ تب پھر میں نے تمہارے کو اور اپنے آپ کو مشابہت دیکر ٹوٹ ڈالا (ارتقا دھوپ اور چھاپا گیا)۔



جا کارن جگ ڈھونڈھیا۔ سو تو ہر دے مالہ  
پران۔ پردہ دیا بھرم کا تا سے سوچھے ناہہ  
جیوں تینوں میں پوتلی توں مالک گھٹ ماہہ  
مورکھ لوگ نہ جانئے باہر ڈھونڈن جاہہ (کبیر)

دیشہ آئیں دیش دیش تیل  
تزلزل تروٹم شش آدہ واؤ  
شوی ڈیوٹم شایہ شایہ میل  
شہ ترہ ترہ تروٹم شوی دراؤ (۴)

میں دیش دیشوں کو (تیل) اچھی طرح سے جہاں کر اپنے دیش بند میں آگئی اور  
(ان سے دور) بھاگ کر شہ اور دایو کو کاٹ لیا۔ شو ہی کو ہر ایک شے میں ملا  
ہوا دیکھ پایا۔ چھ اور تین کو بند کر دیا۔ پھر بھی شیش شو ہی نکل آیا۔  
دیا کھیا۔ میں دیش دیشوں ارتھات دشا انتر آتمک راگ روپی دشاؤں  
کو (تیل) تل میں چھپا ہوا تیل جیسا جان کر ارتھات اچھی طرح سے اُن کے  
سروپ اور سو بھاؤں کو جان کر۔ تب ہی پھر میں (دیشہ آئیں) سجادہ روپ  
دیش بند ارتھات جت کے دھیائ دھارنا پھر اپنے کے اسکا کرتا ہوتے میں  
آگئی پھر (اور بکھت راگ آتمک دشاؤں کے سنگ سے) دور بھاگ کر  
(اپنا سارا جہم ایسے ہی) شہ اور دایو میں گزار گزار کر کاٹی رہی (ایسا  
کرتے پر) ہر ایک شے میں شو کو ہی ملا ہوا ملن پایا۔ پشچات اور بکھت  
انتر آتمک راگ روپی دشاؤں میں سے ایک میں کے مروتا وشدھ ہو جانے  
پر باقی چھ اور تین ارتھات نو وشیہ روپی انتر آتمک دشاؤں

کو بند کر دیا۔ ایک کا پورا انھو ہو جانے پر پھر بھی شیش شو ہی نکل  
آیا۔ اور پھر بکھت دشاؤں (ایک وشدھ ہوا میں) باقی چھ اور  
تین ارتھات شہ۔ پسرش۔ روپ۔ رس اور گند۔ کام۔ کرودھ۔ گوبھ  
اور موہ :

پرمال (دیش بند جت دھارنا) نا بھی چکر۔ ہر دے کل آدہ شریہ  
کے پسر والا دیش ہے اور آکاش شورہ یا چدرما۔ آدہ کوئی بھی  
یوتنا یا کوئی مورتی۔ تنھا کوئی بھی پدارتھ باہر کی دیش ہے۔ ان میں  
سے کسی ایک دیش میں جت کی ورتہ کو لگانے کا نام دھارنا ہے اسی  
میں ایکراگر ہو جانا دھیان ہے (یا تنجل یوگ دشن و بھوتہ پادا ۱-۲)  
دشدشا سے اٹھی پربل کرودھ کی سگ  
سنگتی شیتل سادھو کی شرن اُترے بھاگ  
پر سینا سب موہ کی کئے کبیر۔ سمجائے  
ان سے جو کوئی باجھی بھوہ ساگر تر جائے (کبیر)

سبند - فلی وندہ زدتم۔ جگر مورم  
تیلہ کل ناؤ درام  
تیلہ دل ترا و مس نتی (۸)

میں نے اپنے سو بھاؤں میں سے (اتر کر لوں کے بیتر پر کر تہ سے  
بندھے ہوئے وشیہ آسکتیوں کے) سب میں کو جلا دیا اور اپنے جگر کو  
بھات دل کے سب کا منار روپی خواہشات کو) مار ڈالا۔ تب ہی پھر میرا



نام نل پر سید ہوا۔ جب کہ میں نے (پریشور پر اپنی کرنے کی اچھا روپی) اپنے دامن وہیں پر پھیلانے (ارتھات پریشور کے دھیان دھارنا میں نرنتر بیٹھی رہی)

تھانڈان بوسس پانی پانس  
تھیت گیانس دوت نہ کو نثر  
کرمس و اثرس مئے خانس

26 بھر بھر جام نہ پوان نہ کا نہم (۹)

میں آپ ہی اپنے آپ کو ڈھونڈتے ڈھونڈتے، ارگئی اس چھپے ہوئے گیان تک کوئی (کو نثر) چھوٹا نہیں پہنچا۔ جب کہ میں نے اس کو (انتر آتما کو) اپنے ساتھ لے کیا۔ تب ہی میں (میخانس) سراجا میں پہنچ گئی۔ یہاں پر جام بھرے بھرے پڑے ہیں پر انہیں کوئی پیتا نہیں۔ دیا کھیا۔ میں ساری عمر آپ ہی اپنے آپ کو ڈھونڈتے ڈھونڈتے ارتھات تنہا کرتے کرتے تھک کر رہ گئی۔ اس ادھیاتم روپ چھپے ہوئے گیت گیان کے جاننے تک کوئی بھی چھوٹا (بال) ارتھات بل نہیں ٹوڑ کھ نہیں پہنچا جب کہ میں نے عمر بھر نرنتر دھیان دھارا تنہا کرتے کرتے پریشور انتر آتما کو اپنے ساتھ پریم میں لے کیا تب ہی پھر میں (سراجا) ارتھات امرت دام میں پہنچ گئی۔ یہاں پر تو گیان روپی امرت کے جام بھرے پڑے ہیں مگر انہیں کوئی پیتا ہی نہیں (ارتھات اس ادھیاتم مارگ کے جاننے کی طرف کوئی اپنا رخ ہی نہیں کرتا۔ پرمان۔ یہ آتما بل ہیں مش کے دھارا پر اپت نہیں کیا جاسکتا۔ تنھا

پر ماد سے۔ اتھوا لکھن رست تپ سے بھی پر اپت نہیں کیا جاسکتا۔ کنتو جو بدھیان سادھک اپالوں کے دھارا پر پتین کرنا ہے اس کا یہ آتما برہم دام میں پر دشت ہو جاتا ہے (منڈوک اپنشد ۳-۱۰)

سیند لوکہ نارہ یلہ لولہ لہلہ نووم  
مرئے مویس تہ روزس نہ زرئے  
رنگہ رتھ زاجی کیاہ نہ رنگ ہووم  
یہ دین ترم نہ کیاہ نہ کرئے (۱۰)

جب کہ میں اس کو پریم روپی اگنی سے گودی میں ہلاتی رہی۔ میں تو مرنے کے بغیر زندہ ہی مر گئی پھر میں ذرا بھر بھی نہ رہی (اس سے پہلے اپنی بے رنگ ذات ہونے پر بھی میں نے کیا کیا رنگ نہ دکھائے۔ جب کہ میرے سے میں (میرا) کہنا ہٹ گیا اب یہ پر کرتی) کیا کرے گی۔ دیا کھیا۔ جب کہ میں اپنے بہتر سھت پر برہم (انتر آتما) کو پریم روپی اگنی سے اپنے ہر دے روپی گودی میں اوم اوم کے شبد کہہ کہہ کر پریم اور لال کر کے ہلاتی رہی۔ میں تو مرنے کے بغیر زندہ ہی اس کے پریم میں مر گئی (اس دارج سے مرنے پر) پھر میں ذرہ بھر ارتھات انور (انور) جتنا بھی نہ رہی یعنی دویت بھاؤ اور میں پن کا ناش ہو کر اسی برہم میں رہیں ہو گئی اس سے پہلے جنم و جنما تروں میں چھپے رنگ (انتر آتما روپ) والی نے اس سندر کے آواگن اور پر کر نہ سنا۔ میں بڑھ کر میں نے کیسے کیسے ناچ و رنگ نہ دکھائے جبکہ اب میرے سے میں (میرا) یہ سب کچھ کہنا ہٹ گیا۔ اب یہ پر کرتی چھپے کیا کرے گی (ارتھات



میں۔ میرا گلنے پر جب میں کچھ رہا ہی نہیں گیا اب یہ پر کرتی کہاں سے اور کہاں کا کم بندھن لاکر آتین کرے گی) پرمان۔ جس سخت میں پر برہم پریشور کو بھلی بھانہ جاننے والے ہمارے پریش کے انھوں میں (میں۔ میرا۔ یہ دوت بھاؤ گل کر) سمجھوں پرانی پر ماتم سروپ ہی ہو گئے۔ اس سخت میں ایکتا کا ترنتر ساکشتات کار کرنے والے ہمارے پریش کے لئے کون سا مودہ اور کون سا شوک رہ جانے سے وہ تو شوک مودہ سے رمت پرہ پورن آئند سروپ ہو جاتا ہے (ایش اپنشد ۷) میں میرا گلنے کا پرمان ادھیائے ۳ - واکیرہ ۲ کے پرمان میں پڑھیں۔

تو مہاش اصلاً کمال ابن است تو بس  
تو در دم شو وصال ابن است تو بس (مشوری ہولانا روم)

اندر آست نیر ترھو ندھم سمبد  
یون رنگن کر غم ست  
دھیانہ کن دئے رنگہ کیول زد غم 28  
رنگ گوسنگس بیکت کت (۱۱)

وہ پریشور تو میرے ہی اندر سخت ہو کر اور میں اس کو باہر ادھر اور ادھر ڈھونڈھتی رہی جب کہ (ابھیاس روپی پزان) واپو نے میرے آتم اچھا کے رنگوں کو میرے میں تسلی کر دی (ارتھات لوگ سدھی ہو گئی) پھر میں نے دھیان سے سارے جگت میں کیول اسی پریشور کو سخت ہو کر جان لیا (ایسا انھو ہو جانے پر) یہ سارے

سنا کر کے پر پوج کا رنگ اس پر مہ دیو کے سنگ میں مل کر لے ہو گیا۔ پرمان۔ جس کا آتما لوگ چھت ہو گیا۔ اس کی درشت سم ہو جاتی ہے اور اسے سرو ترہ ایسا دیکھ پڑنے لگتا ہے کہ میں سب پرانیوں میں ہوں اور سب پرانی مجھ میں ہیں (گیتا ۱۶)

سمبد  
مکر س زن مل تر لم منس  
ادہ مہ نیم زرس زان  
سوروی سوئی آئے بو نو کتہ 29  
(۱۲)

جس وقت کر میرے من روپی شیشے کے اوپر سے سب (کا متا آدہ و اسنادوں کا) منیل ہٹ گیا تب ہی پھر میں نے زنادون انتر آتما کی پہچان پائی جب کہ میں نے اس کو اپنے ہی پاس دیکھ پایا۔ (ساکشتات کا رہوئے پر گیت ہوا۔ کہ) سب کچھ تو وہی ہے اور میں کچھ بھی نہیں (ارتھات یہ دوت بھاؤ میں تو۔ یہ۔ وہ کچھ بھی نہیں) پرمان۔ من کا جو میل ہے یہ پر کرتہ کے ست۔ روج اور تم گنوں کے وکار اور دھرم ہیں۔ پریش کے نہیں۔ پریش نو گن ہے اور تر گن شے پر کرتی اس پریش کا درپن دیشیہ ہے جب پریش کے بدھی کو نزل ساتک گیان پراپت ہو جاتا ہے تب یہ پریش اس درپن میں اپنا آتم سروپ دیکھتا ہے (مہا بھارت خانتہ پر ب ۲) آئینہ سکندر جام جم است بنگر۔ دینر تابر تو عرصہ دارد احوال ملک دارا (دیوان حافظ)



سبند

لُل بُو دِل بس لو لڑے  
 ژر باندان لو ستم دِل کھو رات  
 دُچھم پنڈت پَنہ گِرے  
 سوئی مہر مِس نکھتر تہ ساعت (۱۳)

یہاں لیل پریم کے رسیوں سے بندھی ہوئی دست دیوانی بن کر نکلی۔ پرانا کا  
 کھوج کرتے کرتے (زندگی کے) سارے دن اسی طرح ساری راتیں بیت گئیں  
 جس وقت کہ پھر میں نے اپنے ہی (شریر روپی) گھر میں پنڈت کو ارتھات  
 اس پر ہم گیانی ستم درشت آتما کو دیکھ پایا۔ تو اسی وقت کو میں نے (پرکرتی  
 سے چھٹکارا لینے کا) نتیجہ نکھتر اور شچھ مہرت پکڑا۔

پرمان۔ جب یوگی یہاں دیک کے سمان اپنے پرکاش مئے آتم تتو  
 کے ددارا پر ہم تتو کو (ارتھات پنڈت کو اپنے گھر میں) دیکھ لیتا ہے اس  
 سئے وہ اپنا تشچل سب تتوؤں سے دشتھ پر ہم دیو پر مانتا کو  
 جان کر سب پر کرتہ بندھتوں سے سدا کے لئے چھوٹ جاتا ہے (شویتا  
 شتر ایشد ۱۵)

دوش دقت سحر از عصفہ خاتم دادند اندران ظلمت شب آب حیاتم دادند  
 پر مبارک سحر یو وچ فرخندہ شبے آن شب قدر کہ از تازہ برآتم دادند  
 ارفقہ۔ واہ کل کی رات اور صبح کا وقت کیسا ہی مبارک ساعت تھا  
 جب کہ مجھے عصفہ سے (ارتھات) ہنکار تتو اہم بھاؤ سے چھٹکارا دیا گیا  
 اور اس سنا روپی اندھیری رات کے اگیان میں مجھے گیان روپی آب  
 حیات ارتھات جیون مکت پدی عطا کر دی گئی  
 (دیوان حافظ فارسی)

دُچھان تہ پرچھس سار سسی اندر  
 دُچھم پرزلان سار سسی منتر  
 بوزت تہ روزت دُچھ ہر سس  
 گھرہ چھوئی تسندوی بہ کسہ لُل (۱۴)

میں تو سارے برہمانڈ اور سب کے اندر اُسی آتم سرُوب  
 پریشور کو (دیکھ رہی ہوں اور اُسی آتم سرُوب پریشور کو سب کے  
 بیتر چمکتا ہوا دیکھا۔ یہ میرے داکیر ست ہی مان کر اور پھر شانتی  
 سے سو دھار کرنے میں رہ کر (سادھنا کرتے کرتے) اُس ہری ہر (آتم  
 سرُوب پریشور کو اپنے ہی بیتر) کھوج کر کے دیکھ یہ میرا شریر (اور  
 یہ سارا برہمانڈ) اُسی کا گھر ہے میں (دوسری) کون اور کہاں کی لُل آئی  
 پرمان۔ ہی ارجن جل میں رس میں ہوں۔ چندر۔ سوہیہ کی پرچھا  
 میں ہوں۔ سب دیدوں میں پر نو ارتھات اوم کار میں ہوں۔ آکاش  
 میں شبد میں ہوں اور سب پرشوں کا پرشار تھ میں ہوں۔ پرتھوی  
 میں سگندھی اور اگنی کا تیج میں ہوں سب پرانیوں کی جیون شکتی اور  
 تپسیوں کا تپ میں ہوں۔ ہی یارتھ مجھ کو سب پرانیوں کا ستان تیج  
 سمجھ بدھیما نوں کی بدھی اور تپسیوں کا تیج بھی میں ہی ہوں (ارتھات  
 یہی ہی سب میں چمکتا ہوں۔ گیتا ۱۰/۸)

سبند  
 چھوئی کوہ چھوئی نا کوئے  
 دُچھم اور یوہ نا کوئے  
 دیر پکل تے مول نا کوئے  
 چھوئی ژر باندان تہ کارن نا کوئے (۱۵)







وہ کہیں ہے اور کہیں نہیں ہے۔ میں نے اس کو اپنے بغیر ادھر اور ادھر کہیں بھی نہیں ڈھونڈا۔ اس پر ماتا کے پھل کا مولیٰ کہیں بھی نہیں ہے اور اس کا ڈھونڈھنا اور کھوج کرنا (اپنے بغیر) کہیں بھی نہیں ہے۔  
ویا لکھیا۔ یہ آتما (پر برہم پریشور) کسی کسی مہا پرش یوگی کے دیکھنے میں آتا ہے اور یہ آتما۔ سنساری مورتھ مشنوں کے دیکھنے اور جاننے میں آتا ہی نہیں۔ میں نے اس کو ادھر اور ادھر اپنے بغیر کہیں بھی نہیں ڈھونڈا۔ اس پر ماتم روپ آتم تو کے پھل کا مولیٰ اور تولنا کہیں اور کسی کے پاس بھی نہیں ہے اور اس آتما کا ڈھونڈھنا اور کھوج کرنا اپنے سے باہر کہیں بھی نہیں ہے۔

پرمان۔ جو آتم تو بہتوں کو تسننے کے لئے بھی نہیں ملتا اور جس کو بہت لوگ سن کر بھی سمجھ نہیں سکتے ایسے اس آتما کو ڈھ آتم تنو کا وزن کرنے والا مہا پرش آتش پریم ہے پر م درلب ہے اور اس آتم تنو کا پر اپت کرنے والا بھی بڑا کشل کوئی ایک آدھ ہی ہوتا ہے اور اس آتم تنو کو صلی بھانترہ جاننے والے گورو کے دوارا شکشا پر اپت کرنے والا آتم تنو کا گیا بھی آتش پریم ہے۔ پر م درلب ہے۔ سادھارن منش کے دوارا بتلائے جانے پر اور اس کے انوسار بہت پرکار سے جتن کئے جانے پر یہ آتم تنو۔ اچھی طرح سمجھ میں نہیں آسکتا۔ کسی دوسرے تو گیانی پرش کے دوارا اپدیش کئے جانے کے بغیر اس وشے میں منش کا پریش نہیں ہوتا کیوں کہ یہ اتنرت سوکشم دستو سے بھی ادھک سوکشم ہے۔ اس لئے ترک سے اتیت ہے (کچھ اپنشد ۱-۲)

ادھ تہ پائے۔ پورہ تہ پائے  
یت دانے روزہ تہ زانہہ  
پائے گیت تہ پائے گیانی  
پائے پانس نوڈ نہ زانہہ (۱۶)

ادھر سے بھی وہ آپ ہی ہے اور ادھر سے بھی وہ آپ ہی ہے کبھی بھی وہ پیچھے ہٹ کر نہیں ہے گا۔ آپ ہی وہ گیت بھی ہے اور آپ ہی وہ گیانی بھی ہے اور آپ ہی وہ اپنے آپ کو کبھی بھی نہیں مرا۔

ویا لکھیا۔ ادھر سے بھی وہی نرا کار ادھت سروپ سب کا آدھ کارن۔ پر برہم آپ ہی ہے اور ادھر سے بھی وہی یہ سارا درشمان جگت براب سروپ پر برہم آپ ہی ہے۔ کبھی بھی وہ من واکیرہ آدھ جہر گت کرنے والے دیوتاؤں سے پیچھے نہیں رہے گا۔ آپ ہی وہ سب پرانیوں میں اور سارے تریبون میں گیت ہو کر چھپا ہوا ہے اور آپ ہی وہ گیانی ارتھات اپنے آپ کو جاننے والا ہے۔ آپ ہی وہ سویم اپنے آپ کو کبھی بھی نہیں مرا۔ پرمان۔ وہ پریشور اجل اور ایک ہیں اور میں سے بھی ادھک تیر گت فیکت سب کے آدھ کارن۔ گیان سروپ سب کو جاننے والا۔ اس پریشور کو بندر آدھ دیوا ہرشی گن پورن روپ سے نہیں جان پاتے۔ پر برہم دوسرے دوڑنے والوں کو سویم ستھت ہتے ہوئے ہی اتہ کرمن کر جانے ہیں ان ہی ستا شکت سے دیوا آدیوتا۔ جل ورتا۔ پرکاشن آدھ کرمن کرنے میں سمرتھ ہوتے ہیں۔ وہ پرمانا چلتے ہیں۔ وہ پرمانا نہیں چلتے۔ وہ دور سے بھی دور ہیں۔ وہ نزدیک بھی ہیں۔ وہ اس سارے جگت کے تیرتہ پورن ہیں اور وہ اس سارے جگت کے باہر



بھی ہیں (ایش اپنشد ۴-۵)

سیند ادرہ تہ پائے یورہ تہ پائے  
پائے پائس چھو نہ ریلان  
پر تھم آڑس نہ مولیہ دارنی  
سوئی کا مالہ نژی آشیخ زان (۱۷)

اُدھر سے بھی دی رکاز اڈکت سر دپ آپ ہی ہے اور اُدھر سے بھی  
سارا در شمن جگت آپ ہی ہے آپ ہی وہ (سب میں سہت چوکر) اپنے  
آپ کو ملنے میں آتا ہی نہیں۔ اس پر ماتا کے آد- انت اور مدھ دچار کرنے  
میں بڑھی کی ایک رتی بھی سما نہیں سکتی۔ ہی تاں اُسی کو تم ایک اشیخ مئے اُدھوت  
مایا جان۔

پرمان- شری بھگوان کہتے ہیں میں نے اپنے اڈکت سر دپ سے اس  
سارے جگت کو پھیلا یا ہے۔ چھ میں سب پرانی ہیں۔ پر تو میں اُن میں نہیں  
ہوں اور مجھ میں یہ سب پرانی بھی نہیں ہیں۔ دیکھو یہ کیسی میری ایشوری  
کرنی اور یوگ سامتھ ہے۔ سب پرائیوں کا اُتین کرنے والا میرا آتما  
اور اُن کے پتر سہت چوکر اور اُن کا پال کر کے بھی پھر اُن میں نہیں ہوں  
سر دترہ پہنے والی جان دا بوجس پر کار سرودا آکا ض میں کہتی ہے۔  
اُسی پر کار سب پرائیوں کو مجھ میں سمجھ (گیت ۹/۱)

سیند پائے آڈ پائس سیتی  
پائے کورن پنن دچار

پائے پنن پان پچھنا دن  
پائے پنن پان (۱۸)

آپ ہی اپنے آپ کے ساتھ آیا۔ آپ ہی اپنے آپ کا دچار کیا۔  
آپ ہی اپنے آپ کی پرشنا ارتھات بڑھائی جتلانے لگا۔ آپ ہی  
اپنے آپ کو گیت کر گیا۔

دیا کھیا۔ دیکھو یہ پر برہم کی آشیو یہ مئے اُدھوت مایا۔ آپ ہی  
وہ پر برہم جو آتم رڈپ سے اپنے آپ کو اپنی ہی تو گتا ترک مایا کے  
دش میں کر کے جم دھارن کر کے آیا اور پھر یہاں سنسار میں آپ ہی اپنی  
بڑھائی جتلانے لگا۔ ارتھات ہم ہم کر کے امتکار سے جس کے دوار اپنے  
میں آردپت کئے ہوئی دیماں اور ادیماں گنوں سے اپنے کو گکھت مان  
کر منش ہم ہیٹ۔ ایسا مانتا ہے کہ میں بڑا کولیں ہوں میرے برابر دوسرا  
کون ہے وغیرہ وغیرہ جب کبھی پھر اپنے ہی دیوہ اچھیا سے اپنے آپ کا  
دچار کرنے لگا کہ میں کون ہوں۔ یہ جگت کس پر کار سے اُتین ہوا۔ اس کا  
کرتا کون ہے اس کا اُپادان کارن کیلہ ہے۔ اس طرح کا ادھیاتم دچار  
کرتے کرتے اپنے سر دپ کے جان لینے پر آپ ہی اپنے تو سر دپ میں  
اپنے کو گیت کر کے اُسی میں سما گیا۔

شنیوک میدان کڈم پائس  
مہ نلہ رڈم نہ پدھ نہ پو ش  
کوری سنن پانی پائس  
اُدہ کھہ کھ پھل لہ پپوش (۱۹)



میں نے (اپنے زندگی کے دنوں میں) اپنے آپ کو شونیا کا میدان کاٹ کر نکال ڈالا ایسا کہ مجھ تل کو نہ تو کوئی بدھی نہ تو کوئی ہوش ہی رہا۔ میں آپ ہی اپنے آپ میں جاگ اٹھی۔ پھر نہ معلوم کس طبقہ میں سے مجھ تل کے بیتر (امرت روپی) نکل کا پھول کھل آیا۔

دیا کھیا۔ میں نے پرمانا کی سادھنا کرنے کرتے شونہ نہ روپی پر مہر تیاگی درقی سے (سادھن اوستھا کا وقت ارتھات) اپنی عمر گزار دی۔ ایسا کہ مجھ تل کو تنہا کرتے کرتے سنا روپی نہ تو کوئی بدھی نہ تو کوئی ہوش ہی رہا۔ اس طرح کی سادھنا کرتے مجھے پھر اپنے آپ ہی اوو پارو پ ایگیاں اندھکار کے نیند سے گیان روپی جھاگ کھل آئی۔ پھر نہ معلوم مجھ تل کے بیتر کس نکل سر کے طبقہ میں سے تریف گیان امرت روپی نکل کا پھول کھل آیا (اس واکہ کا پرمان گیتا ۱۲/۱۶ اگلے واکہ کے پرمان میں دیا ہوا ہے۔ پڑھیں۔

ادریکھت راوپہ منترہ راؤن روؤم  
راوٹھ اتھہ ایس بھوہ سرہ  
اسان تہ گندان سہری پرودوم  
دینے کو روم پائس سرہ (۲۰)

کھنٹے میں سے میرا (دیا) لاؤن کھو گیا۔ یہ کھو کر اس بھوہ سرہ بیتر ڈھوبی ہوئی) میں اپنے ماتھہ آئی۔ پھر سنتے اور کھلتے آتما کو برپیت کیا اور کہنے کے بغیر اپنے آپ ہی جان کر پرکاشت کر ڈالا۔ دیا کھیا۔ جب کہ میرے انتہ کرلوں میں بسا ہوا ایگیاں روپی کھوٹانے

میں اپنے میں ایسی کھوئی کہ اپنے کھونے کا بھی صحیح کیا نہ ہو۔ کھونے سے بھوہ سرہ کے تھارت آئی تھی۔ اس کی سے سہرہ آتما کو دیا۔ اور کسی کے لیے بیتر روو نہ مانا۔ ارتھات آتما کو دیا۔

دولے و کاروں میں سے یہ میرا (دیا) بھادی سمرات پھولا ارتھا ہنکار تو (ایگیاں کا کارن) کھو کر نشٹ ہو گیا۔ یہ کھو کر ہی اس سنار سمندر کے بیتر ڈوبی ہوئی میں آپ ہی اپنے کو ماتھہ آئی۔ تب پھر میں نے سنتے سنتے اور کھلتے کھلتے اپنے اندر سخت آتما کو برپیت کیا اور کسی کے کہنے کے بغیر ہی اپنے ہی گیان پرکاشت سے پرمانہ تو کو جان کر پرکاشت کر ڈالا۔

پرمان۔ جن کے انتہ کرلوں کا ایگیاں جس سے کردہ مہر ہوتے ہیں۔ آتم روپیک روپ گیان سے نشٹ ہو جاتا ہے ان کے لئے ان ہی کا وہ اپنا گیان پرمانہ تو کو سوہرہ کے سمان پرکاشت کر دیتا ہے۔ اور اس پرمانہ تو میں ہی جن کی بدھی رنگی جاتی ہے وہیں پر جن کا انتہ کرن رم جاتا ہے اور جو تو پراپن ہو جاتے ہیں ان کے پاپ گیان سے بالکل دھوئے جاتے ہیں اور وہ پھر جنم نہیں لیتے (گیتا ۱۲/۱۶)

لتن ہند مانس لایوم وٹن  
اکئی ماؤنم ایچی وٹھ  
بیم بیم بوڑن تم کوہن متن  
للمہ لوز شستین کوئی کتھ (۲۱)

میرے لاؤن کا مانس سرکوں میں چٹ گیا۔ ایک ہی نے اس ایک ہی کا مارگ دکھایا جو بھی ایسا ہی سن لیں گے وہ دیوانے کیوں نہ ہو جائیں گے۔ تل نے سینکڑوں کی ایک ہی بات سمجھی۔

دیا کھیا۔ میرے لاؤن کا مانس پرمانا کی سادھنا کرتے کرتے اپنے آپ کو گپت رکھنے کے لئے کوہ دیبا لاؤن میں پھرتے پھرتے سرکوں میں



میں نے (اپنے زندگی کے دنوں میں) اپنے آپ کو شونیا کا میدان کاٹ کر نکال ڈالا ایسا کہ مجھ تل کو نہ تو کوئی بدھی نہ تو کوئی ہوش ہی رہا۔ میں آپ ہی اپنے آپ میں جاگ اٹھی۔ پھر نہ معلوم کس ملکہ میں سے مجھ تل کے بیتر (امرت روپی) کل کا پھول کھل آیا۔

ویا کھیا۔ میں نے پرمانا کی سادھنا کرنے کرتے شونیہ روپی پرہو تیاگی درقی سے (سادھن اوستھا کا وقت ارتھات) اپنی عمر گناردی۔ ایسا کہ مجھ تل کو تنیا کرنے کرتے سنا روپی نہ تو کوئی بدھی نہ تو کوئی ہوش ہی رہا۔ اس طرح کی سادھنا کرتے مجھے پھر اپنے آپ ہی اودیا روپ اگیان اندھکار کے نیند سے گیان روپی جھاگ کھل آئی۔ پھر نہ معلوم مجھ تل کے بیتر کس کل سر کے ملکہ میں سے نرلیف گیان امرت روپی کل کا پھول کھل آیا (اس واکہ کا پرمان گیتا ۱۶/۱۲ اگلے واکہ ۱۷ کے پرمان میں دیا ہوا ہے۔ پڑھیں۔

ادیکھت

راوہ منترہ راوون رووم

واکہ کو

راوہ اتھ ایس بھوہ سرہ

دوسرے شانات

اسان چ گندان سہری پرودم

میں ۳۶

دینے کو روم پانس سرہ (۲۰)

کھننے میں سے میرا (راجا) راوون کھو گیا۔ یہ کھو کر اس بھوہ سرہ کے بیتر دھوبی ہوئی) میں اپنے ہاتھ آئی۔ پھر سنتے اور کھیلے آتما کو پر اپت کیا اور کہنے کے بغیر اپنے آپ ہی جان کر پرکاشت کر ڈالا۔ دیا کھیا۔ جب کہ میرے انتہ کرلوں میں بسا ہوا اگیان روپی کھوٹالے

دولے وکاروں میں سے یہ میرا (بلا بھادی سمرات پولا) تھا آہنکار توتو (اگیان کا کارن) کھو کر نشٹ ہو گیا۔ یہ کھو کر ہی اس سنا ر سمد کے بیتر ڈوبی ہوئی میں آپ ہی اپنے کو ہاتھ آئی۔ تب پھر میں نے سنتے سنتے اور کھیلے کھیلے اپنے اندر سخت آتما کو پر اپت کیا اور کسی کے کہنے کے بغیر ہی اپنے ہی گیان پرکاشت سے پرمانہ توتو کو جان کر پرکاشت کر ڈالا۔

پرمان۔ جن کے انتہ کرلوں کا اگیان جس سے کہ وہ موہت ہوتے ہیں۔ آتم وچیک روپ گیان سے نشٹ ہو جاتا ہے ان کے لئے ان ہی کا وہ اپنا گیان پرمانہ توتو کو سوئی کے سامان پرکاشت کر دیتا ہے۔ اور اس پرمانہ توتو میں ہی جن کی بدھی رنگی جاتی ہے وہیں پر جن کا انتہ کرن رم جاتا ہے اور جو توتو پر اپن ہو جاتے ہیں ان کے پاپ گیان سے بالکل دھوٹے جاتے ہیں اور وہ پھر ہم نہیں لیتے (گیتا ۱۶/۱۲)

لتن ہند ماتہ لاریوم دتن

اکھی ما دغم ایچی دتھ

یمیم بوزن یمیم کوہن متن

للمہ لوز شستن کوئی کتھ (۲۱)

میرے لاتوں کا ماتس سرکوں میں چھٹ گیا۔ ایک ہی نے اس ایک ہی کا مارگ دکھایا جو جو بھی ایسا ہی سن لیں گے وہ دیولنے کیوں نہ ہو جائیں گے۔ تل نے سینکڑوں کی ایک ہی بات سمجھی۔

دیا کھیا۔ میرے لاتوں کا ماتس پرمانا کی سادھنا کرتے کرتے (اپنے آپ کو گپت رکھنے کے لئے) کوہ دیبا باؤں میں پھرتے پھرتے سرکوں میں

میں اپنے میں ایسی کھو گئی کہ اپنے کھونے کا بھی صحیح

کیا نہ ہو کھونے کے لئے سنی بھوہ سرہ کے توتو سے آگئی

و آسانی سے سہرا آتما کو پایا۔ اور کسی کے لئے لیسر توتو

کے سامان دا ارتھات آتما کو پایا۔ اور کسی کے لئے لیسر توتو



جھٹ گیا۔ اس طرح سے تن مٹے ہو جانے پر ایک ہی پرتو (ادم) کے کارن نے اُس ایک ہی حرم کار سرودہ کارنوں سے دہت پورن برہم کے جلنے کا مادگ دکھلایا جو جو بھی کوئی ایسا ہی سن کر ارتھات نشیجے آتک بدھی میں دچار کوئے اُس پر ماتم کے کھوج کرنے کو جان لیں گے۔ وہ اُس پر ماتم کے پریم اور کھوج میں پڑ کر دیوانے کیوں نہ ہو جائینگے۔ مجھ نل نے سینکڑوں ستاری سکھ اور وصال سورگ سکھ کے بدلے ایک ہی پرتو ارتھات ادم کے چپ اور دھیان کو آتم پراپتی روپ پرہم سکھ کا لایہ سمجھا۔

پرمان۔ یہ ایک نہ جانیا ہوا جانے کیا ہوئے

ایکے تے سب ہوت ہیں سب سے ایک نہ ہونے  
سب آئے اس ایک میں ڈالی پات پھل پھول  
کیرا بلچھے کیا رہا۔ کہہ پکڑا جب مول

نل بو دریس دُورے دُورے  
گلف تھو تھو دچھس  
پس نن نیرے سو فٹ کریرے  
کھیون دیون پچھس (۲۲)

میں نل اپنی چھاتی کو تالا لگا کر گلی گلی پھرتی رہی۔ جو کوئی دکھا داکر کے نمودار نکلے وہ کوئیں کے بیتر دُوب گیا اور اُس نے اپنی کائی (یکھیبہ کو کھانے کے لئے دی  
دیا کھیا۔ میں نل ہر ایک جگہ شہر اور گاؤں کے گلیوں اور کوچوں میں

اپنی یوگ بل کی چھاتی کو ڈنڈ اور مون روپی مضبوط تالا لگا کر پھرتی رہی جو کوئی یوگی اس ڈنڈ اور مون روپی شکنی کو تیاگ کر کر ماتیں کر کے پھٹ کر نکلے سمجھو کہ وہ یوگی اس سناہ کے گہرے کوئیں میں پھر دُوب گیا اور اُس نے اپنی یوگ بل کی ساری کائی یکھیبہ کو کھانے کے لئے دے دی۔

پرمان۔ شری بھگوان کہتے ہیں۔ ذن کرنے والوں کا ڈنڈ ارتھات سیندھے مارگ میں چلنے والوں کو ذن کرنے کی شکنی میں ہوں۔ دے چلے چلنے والوں کا نیلے میں ہوں گیت رکھتے جیو کہ بھاؤں میں مون میں ہوں۔ گیان والوں کا گیان میں ہوں (گیتا پٹھ) بھاؤ یہ ہے کہ جو کوئی یوگی کر تو یہ تیاگ روپ پر ماد سے اتھو ایل ہیں تب سے شیل اور مان میں پھنس کر ڈنڈ اور مون روپی شکنی کو تیاگ کر کر ماتیں کرنے لگتا ہے سمجھو کہ اُس نے اپنی ساری یوگ بل کی کائی یکھیبہ کو کھانے کے لئے دے دی ارتھات اپن یوگ بل کھو بیٹھا۔

سورگہ جاہم تراوت الکھ پر دوم  
دگ نلہ نادم دیہ سنترہ پرے  
پست اردنہ دتھت ممت دُر نووم  
ترین تر مالہ گنس پٹھ نسر چھے (۲۳)

سورگ لوک کے اداک دستر تیاگنے پر ہی میں نے الکھ پراپت کیا۔ پریشور کو پراپتی کرنے کی اچھیا میں در دیں سہن کریں۔ برہمی سمئے پد اٹھ کر پانگل کو جگایا۔ ہی تات اس میرے مات کو چنن چھے جا کیونکہ تم کو درخت پر گہری سیند پڑی ہے۔



دیا کھیا۔ انیک پرکار کے کانٹا روپی وصال سورگ سکھ کے لوگ دستھ  
بتا گئے یہی تھے شکام سرودہ منکلیپ تیاگ سنیاں درتی پراپت ہوئی اور میں  
نے پریشور پراپتی ہونے کے پریم میں پرو کر ماترا پریش اور تھات مسکھ۔ جو کھ  
سردی۔ گرمی۔ مان۔ ایمان۔ ایتادہ کی در دیں اپنے آپ میں بہن کریں۔ رات کے  
پچھلے پہر بہی سسے پراٹھ کر پرا کر وہ گنوں کے نشے میں بندھے ہوئے اس  
اپنے مست پاگل جیو آتما ارتھات اپنے آپ کو جاگ اٹھایا یہ کہ لوگ سادھنا  
کرنے میں لگ گئی۔ ہی نات اس میرے گبان پریش کو وچار کر کے سوچ لے  
کیوں کہ تم کو اس سنار روپی پریشور کے انشوتھ ورکھ پر آگیاں روپی  
نشے کی گہری نیند پڑی ہے۔

پر مال۔ جو لوگ۔ رگ۔ یڑو اور سام ان تینوں دیدوں کے  
کرم کرنے والے تنھا سوٹم یا جی اور پاؤں سے پھوڑ ہوئے یگیہ سے جھڑ  
پر مانا کی پوجا کر کے وصال سورگ لوگ پراپتی کی اچھا کرتے ہیں۔ وہ  
بندر کے پونہ لوک میں پہنچ کر انیک دودھ بھوگ بھوگتے ہیں اور اس  
وصال سورگ جھکھ کا بھوگ کر کے پونہ کا کھٹے ہو جانے پر وہ پھر جنم  
لے کر مروتو لوک میں آتے ہیں۔ اس پرکار تینوں دیدوں کے شکام کرم کے  
بھوگوں والے پریش بادم بار جنم ورن کے چکر میں گھومتے رہتے ہیں (اگیتا  
۲۱/۲۰) ہی ارجن تجھ پریشور میں مل جانے پر پریم سیدی پائے ہوئے جانتا  
اس پریشور جنم کے چکر کو نہیں پاتے جو دکھوں کا گھر اور ناشوان ہے۔ یہی  
ارجن سورگ سے بیکر برہما کے لوک تک جتنے بھی لوگ ہیں۔ وہاں سے کبھی  
نہ کبھی پتر آدرتی ہوتی ہی رہتی ہے۔ پرنو ہی ارجن تجھ پر ماتا میں مل  
جانے پر پریشور جنم نہیں ہوتا (اگیتا ۱۵-۱۶) سورگ سکھ کے دستھوں کو

ادھیائے ۳ دیکھ کر ۲۳ کا پرمان اچھی طرح پڑھ کر دجاریں۔

سورگس ماجن بکیاہ چھوئی باسو  
نرس داسن آسن دوش  
تھک۔ برش تاسن شتوئے کھا سو  
پائے آسن کاسن بھید (۲۴)

سورگ لوگ پراپتی کی اچھا کرنی تم کو کیا لاکھ دایک بھاسنے میں  
آئی ہے۔ نرک میں داس ہونے کا کارن من کے پتر کا دیش (ارتھات کردھ  
دیر ارشیا) کا ہونا ہے اور کردھ نفرت ایتادہ کا نہ ہونا ہی شتوئے  
پراپتی کے لکھن ہیں۔ دیت کا بھید بھاؤ مٹانا ہی سویم (پر ماتم مروتو)  
ہونا ہے۔

تنہ منہ گیس برتس کوئی  
بوزم شک گھنٹہ وزان  
تھک بھایہ دمارنا یہ دمارنا رترم  
آکاش تہ پرکاش کو روم سرہ (۲۵)

میں تن اور من سے اس کے طرن گئی۔ میں نے وہاں ست پر ماتا کے  
ہی گھنٹہ بجتے سنے اسی دمارنا لگانے کی جگہ پر میں نے دمارنا نہیں دیں۔ آکاش  
اور پرکاش کو جان کر ہی ان ڈالا۔

دیکھیا میں تن اور من سے ارتھات انہہ کر لوں کے آتہ پریم اور وشدھ من  
سے دھیان لوگ میں سخت ہو کر اس اپنے (نر آتما کے طرن گھس گئی میں نے



دہاں ست پرمانہ کے ہی گھنٹہ ارتھات سو اہم سو اہم شدیدیں جکتے سنے  
اور پھر میں اسی دھانے لگانے کی جگہ پر یوگ کی دھیان دھارنائیں دیتی  
گئی۔ تب ہی پھر میں نے آکاش ارتھات تراکار اوکھت سروپ پر برہم اور  
(پرکاش) ارتھات اُن پر برہم سے پرکٹ ہوا یہ سارا در شثمان پرکاش مئے  
جکت کو تنو سے جان کر پرکاشت کر ڈالا۔

ایس تہ سیدوئی گزہ تہ سیدوئی

سیدیں ہول مہ کریم کیاہ

پنس اسس آگرے و دوئی

ویدس تہ وندس کریم کیاہ (۲۶)

آئی بھی میں سیدھی اور جاؤں گی بھی سیدھی۔ تجھ سیدھے کو یہ ٹیڑھا  
کر بیگا کیا۔ میں منبع سے ہی اُس کے پیمان میں تھی۔ تجھ مارگ کے جاننے  
والی کو اور پہچانی ہوئی کو (یہ ٹیڑھا کرے گا کیا۔

دیا کھیا۔ میں سیدھے مارگ سے تنسی سروپ آئی بھی ہوں اور پھر بھی  
تپیا کر کے سیدھے مارگ سے ذاپس جاؤں گی تجھ سیدھے مارگ سے چلنی والی  
کو یہ پرکرتہ گنوں کا ٹیڑھا پن کیا کرے گا۔ میں اپنے پورو ابھاسو کے مندر سے  
ہی اُس اپنے انتر آتا (پرمانا) کے پیمان میں تھی تجھ پر نہ رکھ کے جاننے  
والی کو اور پرکرتہ کے کاریہ کرن اور وشیوں کے آکار میں پر نہ رہت ہوئی  
پرکرتہ گنوں کے ٹیڑھے پن کے جاننے والی کو اور اُس اپنے انتر آتا (پرمانا)  
کے پیمان میں آئی ہوئی کو یہ پرکرتہ کے گنوں کا ٹیڑھا پن تجھ کیا کرے گا؟  
روٹ۔ اس واکیر ورت ٹیڑھے پن کو آپ گیتا ادھیائے ۱۴ کو پڑھ کر اچھی طرح

دچار کر کے سمجھ لیں کئی شوری نے یہ ٹیڑھا کیا سمجھایا ہے  
پرمان۔ در شٹھا ارتھات آداسیتا سے دیکھنے والا ٹیش جب جان  
لیتا ہے کر (پرکرتہ کے) گنوں کے بغیر دوسرا کوئی بھی کرتا نہیں ہے اور  
جب (تینوں) گنوں سے پرے تنو کو پہچان جانتا ہے تب وہ تجھ پرینتور  
میں مل جاتا ہے۔ دہیہ دھاری ٹیش دہیہ کے اُتیتہ کے کارن (سروپ) اُن  
تینوں گنوں کو اتہ کر من کر کے جیم سر تر اور بڑھالے کے دکھوں سے  
وگھکت ہوتا ہوا امرت کا ارتھات موکھش پدکا انبھو کرتا ہے (گیتا  
۱۴-۲) (دوسرا پرمان از دیوان حافظ فارسی)

برعا آمدہ ام ہم بدعا باز دم سروفا با تو قرین باد و قدایا و رما  
فلک آدارہ ہر سو کندم میدانی رخکے آیدش از صحبت جان پرورما  
(ارتھ) میں اپنے تپ بل سے سیدھا) دعا کے ساتھ آیا بھی ہوں  
اور پھر بھی (تپیا کر کے) دعا کے ساتھ واپس جاؤں گا (ہی میرے آتم دیو)  
میرے کو تپا ہے ساتھ ہر وقت دعا اور تپا تپ نزدیکی ہوتی ہے اور خدا ہمارا  
مددگار رہے۔ فلک ارتھات ہیگوان کی مایا (یہ ترکہ جتنے پرکرتہ کے  
کاریہ کرن روپ گن) تجھے ہر طرف پریشان کرتے رہتے ہیں ہی آتم دیو تم  
جلتے ہو کہ اس نایا کو تپا ہے اور میرے (ارتھات جیو اور انتر آتا کے)  
ہم صحبت کا ہر وقت ضد پیدا ہوتا رہتا ہے یعنی یہ سنا موہ روپی  
کا منا میں تجھے ہر وقت پریشان کرتے رہتے ہیں۔ یہ دیوان حافظ کا غزل  
دچار تپہ ہے۔

شہ دن ٹپت شش کل وزم  
پرکرتہ ہنرم پونہ ریتنی



لو لکھ نادرہ سیت و ارج بزم  
شکر لکھ تمہی سیتی (۲۷)

بھرن (کا کچھن مارگ) کاٹ کر میرا شش کل جاگ اٹھا۔ پر کرتی  
کو یوں سے بھسم کر ڈالا۔ پریم روپی اگنی سے ہی میں نے اپنے کلیجے  
کو بھسن ڈالا۔ ایسا کرنے پر ہی پریم شکر کو پایا۔

دیا لکھیا۔ ابھیاں روپی چھ بھومکا میں آؤنگھن ہونے پر دھیر  
ساتویں بھومکا کے مارگ میں پہنچ کر (میرا شش کل ارتھات آئند سروپ  
امرت کا سوم رس پرکٹ ہو کر جاگ اٹھا میں نے (یہاں پر ہمت آدہ  
سات اور تر گنہ مئے) پر کرتی کو یوں سے ارتھات (بھیاں روپی پران  
دلو سے بھسم کر ڈالا۔ یہ کہ پریم روپی اگنی سے ہی اپنے کلیجے کو بھسن  
ڈالا۔ ایسا کرنے پر ہی میں نے پریم شکر (ارتھات برہم تنو) کو پایا  
لیا۔ (اس سے پہلے واکہ ۲۷ میں بھی اسی پر کرتی کا وزن ہے اور اسی  
پر کرتی کو ادھیائے ۵- واکہ ۱-۲ میں گھوڑے کا سروپ سے وزن ہے)۔

سمند لکھ گور برہماندہ پیٹھ کن دیکھم

شش کل وارم یادن تان (۱۶)

گیا نیکہ امرتہ پرکرت برہم ۱۵

لو بھتی مورم آندہ وند تان (۲۸)

مجھ ل نے برہماندہ کے اوپر گورو کو دیکھا اور پھر میرا شش کل  
میرے پاؤں تک پہنچ گیا۔ میں نے اپنی پر کرتی کو گیان کے امرت سے

بھر کر پڑا اور سارا ٹوٹھ آدہ سے انت تک مرکز نشٹ ہو گیا۔

دیا لکھیا۔ مجھ ل نے یوگ کی ساتویں بھومکا کے مارگ برہماندہ کے اوپر  
پہنچ کر برہماندہ کے بھی گورو پر برہم (برہم تنو) کو ساکھشات کار کر کے  
دیکھا اور پھر میرا شش کل ارتھات آئند سروپ امرت کا سوم رس ادھاک  
پرکٹ ہو کر میرے پاؤں تک پھیل کر پہنچ گیا اور پھر میں نے کھتر گنہ جو روپی  
اپنی پر کرتی کو ارتھات اپنے آپ کو گیان روپ امرت سے بھر کر پڑا اور یہاں  
پر ہی سارا ٹوٹھ آدہ سے انت تک مرکز مسہر مول نشٹ ہوا (اس واکہ میں  
وزن پر کرتی کو جو بھوت برا پر کرتی کے نام سے بھگوان نے گیتا ۵ میں  
وزن کیا ہے پڑھ کر چار کریں۔

پر مال۔ جس سخت میں پرمانا روپ اگنہ کو برپا پت کرنے کے ادیش  
سے (ام کار کے جب اور دھیان دوارا منھن کیا جانے سے جہاں پران دلو  
کا بھلی بھانتہ ودی پوروک ٹبرودھ کیا جانے سے۔ تنھا جہاں آئند سروپ  
امرت کا سوم رس (شش کل) ادھاک تلسے پرکٹ ہو کر پھیل جاتا ہے  
اس سمئے من سروتا و شندھ ہو جانے سے (شویتا شتر ایشد ۱۶) اس کے  
بعد جب وہ یوگی یہاں دیکھ کے سماں اپنے پرکاش مئے آتم تنو کے دوارا  
برہم تنو کو (ارتھات برہماندہ کے اوپر گورو راج پر برہم) کو بھلی بھانتہ  
پر تکھ دیکھ لیتا ہے۔ اس سمئے وہ اچھا نش چل مائے وکارول سے ہمت  
سروتا و شندھ برہم دیو پر ماتما کو جان کر سب بندھنوں سے سدا کے  
لئے چھوٹ جاتا ہے (شویتا شتر ایشد ۱۵)



نہ زایس تہ نہ زایس

نہ کھے نیم ہند تہ نہ نشو نیم

نہ چھس نشن پت تہ

نہ چھس ستن

نہ میں جی۔ نہ تو میں زچہ جی۔ نہ میں نے کاسنی نہ تو میں نے سوند

کھائی۔ نہ میں چھہ کئے چھہ ہوں نہ میں سات سے آگے۔

ویا کھیا۔ نہ تو میں کھیں سنسار میں پیدا ہی ہوئی ہوں اور نہ تو

زچہ نہ کر میرے سے کھی کوئی پچہ ہی پیدا ہوا۔ نہ تو میں نے کھی کاسنی نہ

تو میں نے کھی سوند (یہ زچہ ذاتی خوراک) کھائی ہے نہ تو میں پیار تھ بھاونا

نام لوگ مارگ کے پھٹی بھومک کے پچھے ہوں۔ نہ تو میں گاڈ سوشیتی نام

لوگ مارگ کے ساتوں بھومک سے آگے بڑھے ہوں ارتھات میں ساتوں

بھومک جیون مکت ادستھا میں مکی ہوں (اس جیون مکت ادستھا کے پر ابھی

ہوئے پر نہ ست ہی ہے نہ است ہی ہے نہ اہنکاس ہی ہے نہ پیدا ہی ہوا

ہے نہ مرا ہی ہوا ہے۔ نہ جینا ہے نہ مرنا ہی ہے، نہ چھہ اور آیدہ اور آئی

ہے۔ کیوں کھیں ادیت اتہ نزل بھاؤ ہے)

نیل ن روپ سات بھومک میں (۱) شمشید اچھیا (۲) دھارنا (۳) متو

حالتا (۴) ستودا پتر (۵) آسم سکھتہ (۶) پیار تھ بھاونا (۷) تو رہے گا۔ یا =

گاڈ سوشیتی

نڑی دیوہ گرتس تہ دہر تھی سنسارک

نڑے دیوہ دتت کر نزل بہر ان

نڑی دیوہ ٹھہرے دوستی و زک

کس ترانہ دیوہ یون پرمان (۳۷)

ہی پریم دیوہ پریشور تم ہی تو سارے آکاش اور پرتھوی میں

شوہا ایمان ہو کر پھیلنا ہو رہے۔ ہی پریم دیوہ تم ہی نے سارے شریروں

سے کھو تھو میں پران شکتی ڈال دی۔ ہی پریم دیوہ تم ہی تو بلیں بھلے

کے کج جائے لگا۔ ہی پریم دیوہ کون تھا ہے اس مایا کا آد۔ امت اور مدھ

کا پرمان جان سکتا ہے۔

سنا رس منتر باگ کتہ شش روزے

روزئی پریم بھو۔ بھو۔ بھو۔ اگور

نلک منتر باگ بی نلک نادون

جگرس منتر باگ کر سس گورہ گور (۳۱)

اس سنسار کے منتر دیوگات پریم شونیا بھی سچ کر نہیں ہے گا یہاں

تو صرف دی ہی پریم بھو۔ بھو۔ بھو۔ اگور (سپردہ کاروں سے بہت شونیا سر دیپ

ادکھت پریم پریم یوگانہ شیش) سچ کر رہیں گے اسی (تو سر دیپ شونیا

آکار پریم بھو) کو میں اپنے ہر دے روپی گودی میں ہلاتی رہوں گی۔

اور پھر اسی کو اپنے جگر میں (اوم۔ اوم کے شبد کہہ کہہ کر) گورہ گور

ارتھات پریم۔ پیار اور لالن کرتی رہوں گی۔



## تیسرا ادھیائے

کر تک کلا نو چھوئی بنت گڑھن  
و نت گڑھن کیاہ چھوئی پائے  
کشفک پھل چھوئی میلک گڑھن  
ولت روزن گس چھوئی نیائے (۱)

تم نے کرم روپی ورکھ بن کر جانا نہیں ہے۔ کہہ کر جانا تھا ہے واسطے کون سا اُپائے ہے۔ ملاپ کر کے جانا ہی گیان پر اپنی ہونے کا پھل ہے۔ لپیٹ کر کے رہنا کون سا نپائے ہے۔

دیا لکھیا۔ پر ماتا کی پراپتی ہونے کے لئے تم نے جہاں سے انیک پرکار کے سکام کرم روپی پھل دار ورکھ بن کر نہیں جانا چاہیئے کیوں کہ ان سکام کرموں سے وہ پر برہم (موشن پد) نہیں ملتا اور بہت بہت پرکار سے سکام کرموں میں ورت کر پھر یہ کہہ کر جانا کہ ہم کز تارنخہ ہو گئے۔ ارتھات ہم نے ملے لگیہ دان اور دھرم کئی۔ ایسا ابھیماں کرتے رہنا۔ پر ماتا کے پراپتی کرنے کا یہ کون سا اُپائے ہے۔ اپنے انتر آتما کے ساتھ ملاپ کر کے جانا ہی گیان پر اپتی ہونے کا پھل ہے۔ انیک پرکار کے سکام کرم کر کے اپنے آپ کو پر کرتہ کے گنوں میں لپیٹ کر رکھنا یہ کس شاستر کا نپے (فیصلہ) ہے یہ ماں۔ اگیان کے میتر پڑے ہوئے وہ مورکھ سکام کرموں میں

بہت بہت پرکار سے دستے ہوئے اور پھر یہ کہہ کر کہ ہم کز تارنخہ ہو گئے ایسا ابھیماں کر لیتے ہیں۔ وہ سکام کرم کرنے والے لوگ دیشیوں کی آسکتی کے کارن کلیان مارگ کو نہیں جان پاتے۔ اس کارن سے یارم بار دکھ سے اترو ہو کر پونہ کرموں کا پھل پورا ہونے پر سورگ اودہ لوگوں سے ہٹا کر نیچے مرتبہ لوگ میں گر گئے جاتے ہیں (منڈوک اینشد ۱-۹) اپنے ہی میتر سچت اس برہم کو جانا چاہیئے کیونکہ اس سے بڑھ کر جاننے لائق نتو دوسرا کچھ بھی نہیں ہے (شویتا شاستر اینشد ۱۱) (لپیٹ کر کے رہنا) پریش پر کرتہ میں سچت ہو کر پر کرتہ کے گنوں کا اُپ بھوگ کرتا ہے اور پر کرتہ کے گنوں کا یہ سنیوگ ہی پریش کو بھلی بڑی یونیوں میں جنم لینے کے لئے کارن بن جاتا ہے (گیتا ۱۱)

آہر پنہ سدرس ناوہ چھیس لماں  
کتہ بوزہ دئے میون میتہ دیہ تار  
آشن ٹاکن یلون زن شمان  
زور یچھم برمان گرہ گھڑہ ۱ (۲)

میں اپنے سادھا روپی اچھے تاکے سے اس سنا سمد میں ناؤ کو کھینچ رہی ہوں۔ کہاں سے وہ میرا پر ماتا سے گا کر مجھے بھی یاد کرے (میری سادھنا) بچے می کے تھا بچوں میں پانی پڑنے کے موافق جذب ہو رہی ہے اور میرا جی (جیو آتما) گھر جانے کے لئے برہن کرتا رہتا ہے دیا لکھیا۔ میں تو اپنے سادھا روپی کے تاکے سے ہی اس بھیانک سنا سمد میں سے اپنی ناؤ کو کھینچ رہی ہوں۔ کہاں سے وہ میرا پر ماتا



ایسی کمزور سادھنا ہونے پر میری پراختیا سننے کا کہ وہ مجھے اس بھوہ ساگر سے پار کر دے کیونکہ میری یہ سادھنا کچے مٹی کے تھالیوں میں پانی پڑنے کے موافق جذب ہو رہی ہے ارتھات میرے انتہ کرؤں میں یہ سادھنا رُوپی اسرت جل پڑنے پر داسنادوں کے آسکتی کے کارن جذب ہو رہی ہے ارتھات دیکھ سمودائی کا انت ہی نہیں ہوتا اور پر ماتا پراپتی کی تیر اپھیا ہونے پر میرا جیو آتما اپنے گھر ارتھات اُس آدہ کارن پر برہم کے طرف جانے کے لئے برہن کرتا رہتا ہے۔

پرمان - پریتن پورک ادیوگ کرتے کرتے پاؤں سے مشدھ ہوتا ہوا یوگی انیک جنوں کے انتہ پورن سدھی یا کر (انت میں پریر گتی کو پراپت ہوتے دیکھا) تب تک کچے مٹی کے تھالیوں میں پانی پڑنے کے موافق حالت ہوتی ہی رہتی ہے۔ ایشوری نے یہی درشتانت سمجھایا ہے۔

ز عشق ناتمام ما جمال یار مستغنی ست

باب و رنگ دخال و خط چہ حاجت ردی زیارا

(دیوان حافظ)

پر ماتا کے روپ آجھن آئی تہ گزھن گزھے

پکن گزھے دن رات کھو رات

بورے آئی تو رہ نہ گزھن گزھے

کنہہ نہ نہ کنہہ نہ نہ کنہہ نہ تہ کیاہ (۳۰)

آجھن (آج گنتی سے آئی۔ اب جانا چاہیے۔ رات اور دن چلنا چاہیے۔ جہاں سے ہم آئے ہیں اُدھر ہی جانا چاہیے (کہاں) وہ جو کچھ بھی

نہیں۔ کچھ بھی نہیں۔ تو پھر کیا۔

دیا لکھیا۔ ایشوری کہتی ہے کہ ہم آنا دہ کال سے (آجھن) ارتھات جس کا کوئی گنتی ہی نہیں۔ جہم دمرن میں بڑ کر جہم لیتے لیتے آئے۔ اب ہم کو سیدھے مارگ سے ہو کر واپس جانا چاہیے۔ دن اور رات کھوج کر کے چلتے ہی رہنا چاہیے (کہاں) جہاں سے ہم آدہ کے آئے ہیں۔ ہمیش پھر وہیں اپنے مول کارن پر ہم دشمن پر کے اور کھوج کرتے کرتے جانا چاہیے جس پر میں پہنچے ہوئے پریش پھر سنار میں نہیں لٹتے۔ پتر جہم گرہن نہیں کرتے (اُس پر کو کیسے کھوجنا چاہیے) ایشوری کہتی ہے کہ اُس پر ہم شکھ کے کارن (کھو ما پد) برہم کے سروپ کرہم آکھ آدہ گیان یندریوں سے کہ وہ ایسا ہے۔ کچھ بھی نہیں جانتے۔ اٹھو۔ داکھ یندر یہ آدہ کرم یندریوں سے کہ وہ ایسا ہے۔ کچھ بھی نہیں جانتے۔ اٹھو۔ من آدہ انتہ کرؤں میں ملن کرنے سے کہ وہ ایسا ہے کچھ بھی نہیں جانتے (کیا) پھر اس بھو ما پد کا سروپ کیا ہے۔ ایشوری کہتی ہے کہ اسی پد کا کھوج اور دھار کرتے کرتے شرناکت ہو کر اُس بھو ما پر ہم پد برہم سروپ کی جگیا کر فی چاہیے پرمان۔ داں اُس برہم تک پتر یندری نہیں جاتی۔ وانی نہیں جاتی۔ من نہیں جاتا (۳۱) جس پر کارشش کو اُس برہم کا پیدیش کرنا چاہیے وہ ہم نہیں جانتے وہ ہمارے سمجھ میں نہیں آتا کیونکہ اُس برہم کا سروپ جانتے سے بن ہی ہے اور نہ جانتے سے بھی پڑے ہے۔ ایسا ہم سمجھنے ست پرشوں سے چھٹے آئے ہیں جنہوں نے ہمارے سامنے اُس برہم کسا دیا لکھیاں کیا تھا (دکین ایشدہ شکر بھاش) (کھوج کرنا) اُس سٹھان کو دھونڈھ نکالنا چاہیے کہ جہاں جانے سے پھر کبھی بھی واپس



لوٹنا نہیں پڑتا۔ من میں منکلب کرنا چاہیئے کہ اس سنار درکھ کی پڑا تن  
پر درتی جس سے اُتیں ہوئی ہے اُسی آدہ پریش برہم کے اور میں جانا  
ہوں جو مان اور موہ سے رہت ہیں جن کا ابھیمان اور گیان نشٹ ہو گیا  
ہے جنہوں نے آسکتہ دوش اور سنگ دوش کو جیت لیا ہے جو ادھیاتم  
دچار میں لگے ہوئے ہیں جو کامنا سے رہت ہیں جو سکھ اور دکھ۔ پرہ  
اور اپرہ دندول سے پھوٹ گئے ہیں وہ گیانی مہاتما اس ادناشی پرہ  
پد کو پراپت ہو لے ہیں جہاں جا کر پھر دایس لوٹنا نہیں پڑتا۔ ایسا وہ  
میرا پرہ سٹھاں ہے۔ اُسی سے نہ تو سورج۔ نہ چندرما اور نہ اگرہ ہی  
پرکاشت کرتے ہیں (گیتا ۱۵/۴)

سبند  
دور نہ آیس نہ گزھن گزھم  
یکن گزھم داؤ لو کال  
تکھنس پٹھی نژن گزھم  
اژن گزھم سوکھشم پرکار (۴)

میں تو یہاں رہنے کے لئے نہیں آئی۔ اب مجھے سیدھے مارگ سے  
جانا چاہیئے۔ مجھ کو لو کہ رکھشک دیو جیسا بن کر چلنا چاہیئے نہ میں  
تو (جھوما پد کے جگیا سو کرنے پر (اٹا) ناپنا ہو جائے گا) (ایسا وچار  
کر کے) مجھے سوکھشم پرکار سے اپنے سروپ کے میتر گھسنا چاہیئے۔  
ویا لکھیا۔ ایشوری کہتی ہے کہ میں یہاں سنار میں رہنے کے لئے  
نو آئی نہیں (آج نہیں تو کل دیہہ بتاگ کرنا ہی ہے) اب مجھے سادھنا  
رودی سیدھے مارگ سے ہو کر جانا چاہیئے (کس طرح) مجھے تو لو کہ رکھشک

پرمان دیو ارتھات سب میں سہت پران سروپ آتما کو ایکتا سے جان  
کر چلنا چاہیئے (نہیں تو) مجھے اُس پرہم سکھ پراپتی (کھنس پٹھی) جھوما پد  
پرہم تنو کے جگیا سو کرنے پر۔ اور اس انت مایا کے موہ میں پھنسی پر  
اُس سنار رودی آواگن ارتھات جنم و مرن کے کھیل کا ناپنا ہو جائیگا  
ایسا وگیان یں لا کر اب مجھے سوکھشم پرکار سے۔ اُس پرہم سکھ کے  
کارن جھوما پد پرہم کو جاننے کے لئے اپنی ہی میتر گھسنا چاہیئے۔  
پرمان۔ (کھنس پٹھی) ارتھات جھوما ۱۵/۴ کے سروپ کا پرہ  
پادن) جہاں کچھ بھی اور نہیں دیکھتا۔ جہاں کچھ بھی اور نہیں سُنتا۔ تنھا  
جہاں کچھ بھی اور نہیں جانتا۔ وہ جھوما ہے۔ کنتو جہاں کچھ اور  
دیکھتا ہے۔ کچھ اور سُنتا ہے۔ کچھ اور جانتا ہے۔ وہ الپ ہے۔ جو  
جھوما ہے وہی امرت پرہم کہلاتا ہے۔ وہی جاننے یوگ ہے جو  
الپ ہے وہ برتو (پنر آرتی) ہے (چھاند گیہ اپنشد ۲۳-۲۴)

سبند  
آیس کہہ دلشہ تر کہہ وتے  
گزھ کہہ وتہ کوہ زانہ وتھ  
انتھ داؤ لگہ مرہ تے  
چھم چھنس پھوکس کو سہ سہ ست (۵)

میں کس دلش اور کس راستے سے آئی۔ کس راستے سے واپس  
جاؤں گی۔ کس طرح اُس راستے کو پاؤں گی۔ انت میں وہیں پر (ارتھات  
اپنے ہی میتر) وگیان وچار اُتیں ہو گا کہ میرے اس شونیہ شاس  
او خاس میں کون سی ستا ہے۔



دیا لکھیا۔ (دچار کس پر کار کرنا چاہئے) میں کس دیش اور کس مارگ سے آئی ہوں اور کس مارگ سے چل کر واپس جاؤں گی اور پھر کس طرح سے اُس مارگ کو پاؤں گی۔ اسی سوچ دچار کے انت میں وہیں پر ارتقات بارم بار ایسا ہی دچار کرنے پر آپ ہی میرے بہتر یہ لکھئے آتمک و گیان دچار آئیں ہو گا کہ میرے اس شونیہ شناس او شناس میں یہ کون سی سنتا ہے۔ ارتقات یہ میرا شریک کس سنتا ہے چلتا ہے۔ دانی بولنے میں آتی ہے آنکھیں اپنے و شبیوں کو دیکھتے ہیں۔ کان سننے میں آتے ہیں۔

پرمان۔ شبھ اچھا والے پُرن کو گیان پر اپنی کے لئے دچار کرنا چاہئے کیونکہ جس پر کار پر کاش کے بنا کبھی بھی پدارتھ کا بان نہیں ہوتا۔ اسی پر کار دچار کے بنا کسی بھی سادھن سے گیان نہیں ہوتا۔ میں کون ہوں۔ میرا سر پ کیا ہے۔ کہاں سے آیا۔ یہ جگت کس پر کار آئیں ہوا۔ اس کا کرنا کون ہے۔ تنھا اس کا پادان کارن کیا ہے اور میں پانچ بھوت آتمک شریک نہیں ہوں اور نہ مندیرہ سمود ہی ہوں۔ بلکہ اس سے ہی کوئی ہوں۔ وہ دچار اس پر کار کرنا ہوتا ہے۔ (اپر و کھیر انو بھوتہ شکر۔ آچار یہ کرت) (آتم سنتا) جو برہم دانی کے دوارا بتلایا نہیں جاتا۔ بلکہ جس برہم کی سنتا سے یہ دانی بولنے میں آتی ہے جس کو من سے کوئی سمجھ نہیں سکتا بلکہ جس برہم کی سنتا سے یہ منش کامن جانا ہوا ہو جائے جس کو کوئی آنکھوں کے دوارا دیکھ نہیں سکتا۔ بلکہ جس کی سنتا سے آنکھیں اپنے و شبیوں کو دیکھتی ہیں جس کو کان کے دوارا کوئی سن نہیں سکتا بلکہ جس کی سنتا سے یہ کان سننے کے طاقت میں

آتے ہیں یہی آتم سنتا ہے جس میں ہے اسی کو ہر وقت دچار کرتے رہو (دکھیں اپنشد ۴/۱)

سیندھ آئیس دتے گیس نہ دتے

سہ منتر سو تھے تو مستم دھ

چندس دھیم مار نہ آتھے

ناوہ تارکس دھمہ کیاہ نو (۶)

میں سیدھے مارگ سے تو ٹھیک آئی۔ مگر سیدھے مارگ سے چل کر واپس نہیں گئی (سادھاروپی) سیت مارگ سے چلتے چلتے بیچ میں ہی دن۔ ڈوب گیا۔ جب میں دیکھا تو دماں کوڑی بھی نہیں۔ بھلا کشتی والے کو پار لے جانے کے لئے کیا دواں گے؟

دیا لکھیا۔ میں برہم کی آواز دھنا کرنے کے لئے اس منش روپی دیہہ کے سیدھے مارگ سے تو ٹھیک آئی۔ مگر یہاں سنار سے سیدھے مارگ میں چل کر واپس نہیں گئی (برہم کر) سادھنا روپی سیت مارگ سے چلتے چلتے سنار کے موہ اور کامناؤں میں پڑ کر میرے کو دن ڈوب گیا۔ ارتقات زندگی ختم ہو کر بوڑھا یا آ گیا۔ سادھنا دانی کائی کے بیب ہیں مانتھ ڈالا تو دماں دیکھا کوڑی بھی مانتھ نہ آئی۔ بھلا اب میں (اس آتما روپی) ملال کو بھوہ ساگر سے ناؤ پار لے جانے کے لئے اجوت کہاں سے لا کر دے دوں گی؟

پرمان۔ جو ہمیشہ ویک بہن بدھی والا اور چنچل من سے ٹھیک رہتا ہے۔ اُس کی بندریاں۔ آسا و دان۔ سادھی اور دوشٹ گھوڑوں کی



بھانڑ دیش میں در منے والا ہو جاتی ہیں (کھٹ اپنشد ۱۰)

آیا تھا کس کام کو تو سویا چادر تان  
سرت سنبھال اب غافل اپنا آپ پہچان  
کیا کیو ہم آئے کے کیا کریں کے چلے  
ات کے بھٹے نہ ات کے چل بھٹے مول گولے (کبیر)

آسم کوئی نہ سانس سٹھا

نزدیک آست گیس دور

نظاہر نا باطن کو نوی دیو نہم

گیم کھت چت رُو و نزا چور (۷)

میں دہی ایک د آتم سر دی تھی۔ پھر ایک ہو گئی۔ نزدیک ہو کر  
بھی دور چلی گئی (کیونکہ) نہ تو میں نے ظاہر اور نا ہی میں نے باطن۔ اک  
ہی (برہم) کو دیکھا (اس کیسے) مجھے چوین چور کھا پی کر چلے گئے۔

ویا کھیا۔ میں ازل سے آدہ مول کارن سے دہی ایک آتم سر دی تھی۔  
مگر یہاں سنسار میں سب پرائیوں کو پر تھک پر تھک جان کر ایک سے  
ایک ہو گئی۔ آتما کے نزدیک ہونے پر پھر میں بہت ہی دور پہنچ گئی۔  
(اس کو کہے کہ) نہ تو میں نے ظاہر ارتھات در شٹان جگت کے سب پرائیوں  
میں پر مانا کو اور نا ہی میں نے باطن۔ ارتھات دکھت برہم اور اپنے اندر  
سب پرائیوں کو ایکٹا سے جان کر دیکھا۔ اس طرح کے اگیان سے میری  
آتم سستا اور لٹچھے آتماک بدھی۔ یہ سب کچھ میری سمیتا چوین چور کھا  
پی کر چلے گئے۔

سمند  
سوکشم شریر  
کاگیان  
اپریش

پرمان۔ بدھ اس منش شریر میں سب کے بستر سخت آتما کو جان  
لیا۔ تو بہت کشل ہے۔ بدھ اس منش شریر کے رہتے رہتے نہیں  
جان پایا۔ تو دناش ہے۔ بدھیمان پرش سب پرائیوں میں سخت  
ایک ہی پر برہم پر شو تم کو سمجھ کر اس لوک سے مرنے کے بعد امر ہو  
جانتے (لیکن اپنشد ۱۰)

(دچار) اب ہم ان چوین چوروں کا دچار کریں گے۔ ادکھت پر کرتی  
سے تیس تہ اتیں ہوتے ہیں وہ یہ ہیں۔ پانچ ہما بھوت اہنکار۔ بدھی۔  
پانچ کریم بندریاں۔ پانچ گیان بندریاں۔ ایک من اور پانچ بندریہ گوچر  
جب کوئی منش مر جاتا ہے تو وہ پانچ ہما بھوت آتماک شریر کا سنگھات  
یہاں ہی چھوڑ کر میر تو کسے سمئے پر پر کرتے کے باقی اٹھارہ سوکشم تہ  
اور دھرم۔ ادھرم اور کریم کو جیو آتما اپنے ساتھ آکرشن کر کے لے جاتا  
ہے اور جب یہ جیو جم لیکر تیا سھول شریر پاتا ہے تو یہ جیو ان ہی  
سب متوں کو اپنے ساتھ آکرشن کر کے لے آتا ہے۔ اسی کا نام سوکشم شریر  
ہے اور جب تک جیو کو سرو آتم گیان کی پراپتی نہیں ہوتی تب تک  
اسی سوکشم شریر کے کارن سے ہی اس کو نئے نئے جسم لیتے پڑتے ہیں  
یہ سا بکھیر شا بستر اور ویدانت کا درن ہے۔ ایٹوری نے اوپر یکھت دھرم  
ادھرم اور کریم سہت سوکشم شریر کے اٹھارہ متوں میں رہنے والے  
جیو آتما کو۔ پر کرتے کے ست۔ روج اور تم ان تینوں گنوں کے پر درتر  
سنگ سے باندھتے جلنے پر اسی کو ۳ x ۱۸ مساوی چوین چور ورن  
کی ہیں۔ ارتھات ستوگن کے پر درتر سنگ کے سمئے پر یہ اٹھارہ سوکشم  
متوں میں رہنے والا جیو آتما ست گن سو بھاؤ میں درتر رہتا ہے۔ اور



رجوگن کے سمنے پر آگ آگ اور توگن کے سمنے پر اگیان اور موڈ اور  
 تاسمنی سو بھاؤ کا ہو جانا ہے۔ یہ آپ کو گیتا ادھیائے ۱۴ دیکھ ۵ سے  
 لیکر ۲ تک اچھی طرح دیکھنے پر سمجھ آ جائے گا (اس کا پرمان) ہی ارجو  
 چکر سے تپن ہوئے ست۔ راج اور تم یہ تپن گن دیہہ میں رہنے والے  
 نر دگا آتما کو دیہہ میں باندھ لیتے ہیں۔ ان گنوں میں سے نر ملنا کے کارن  
 پر کاش ڈالنے والا نر دوش ست گن (میں سکھی ہوں۔ میں دودان ہوں  
 ایتا دہ) منکھ اور گیان کے ساتھ پرانی کو باندھنا ہے۔ رجوگن کا سو بھاؤ  
 راگ آتما ہے اس سے توشٹا اور آسکتی کی ادیتی ہوتی ہے۔ وہ  
 پرانی کو کرم کرنے کے پر درتہ روپ سنگ سے باندھ ڈالتا ہے۔ کنٹو  
 توگن اگیان سے ادیجتا ہے یہ سب پرانیوں کو مودہ میں ڈال کر یہ مادہ  
 اکسہ اور تندر سے پرانی کو باندھ لیتا ہے (گیتا ۵-۱۱) ادھیائے  
 پہلی دیکھ ۵ میں اسی سوکشم شریر کا درن کپاس اور کپاس پھول کے  
 درشتانت میں ایشوری نے درن کیا ہے۔

پیشد سے  
 برارقتا  
 سمند  
 ۵۶  
 ۸

جو یہ چھ آپ میں ہیں نہ ہی چھ میرے میں بھی ہیں۔ ہی نیلہ کنٹھ  
 آپ سے بن (جائے پر) نقصان اور گھاٹا ہی ہے۔ تم اور مجھ میں بھی  
 ایک بھید بھاؤ ہے کہ تم ان چھ کے سوا ہی ہو اور مجھے ان چھ نے ڈس لیا۔

دیا لکھا۔ ہی پریشور۔ جو یہ چھ میں اور پانچ گیان مندیاں آپ میں  
 ہیں وہی چھ میرے میں بھی ہیں ہی (ساکار مشوب میرے لیٹ پڑو) ہی پریشور  
 نیلہ کنٹھ۔ دیو گندھرب منش بگائے۔ گھوڑا۔ ایتا دہ جو داریوں کو آپ  
 سے بن ارتھان پر تھک پر تھک جاتے پر میرے کو ایکتا کے (نھو) ہونے  
 میں بہت نقصان اور گھاٹا ہے۔ ہی تو بڑا بھاری بھید بھاؤ تم اور مجھ  
 میں ہے کہ تم ان چھ کے سوا ہی ہو اور مجھے ان چھ بندیر روپی کا مانا  
 کے دشیدہ دیکاروں نے آداگن جنم دمرن میں ڈس کر بھٹکا یا (فوطی) یہ  
 واکیر ساکار مشوب پریشور کے درشتانت میں دے کر ایشوری نے درن  
 کیا ہے کیوں کہ نرا کا۔ ادھت پریشور کو یہ بندریوں کے گن لاگو نہیں  
 ہو سکتے۔

پرمان۔ جب من کے بہت پانچوں گیان مندیاں بھلی بھانڈ ستر  
 ہو جاتی ہیں اور بدھی بھی کسی پرکار کی چٹنا نہیں کرتی۔ اس بہت کو روگی  
 پرم گتہ کہتے ہیں (کچھ اپنشد ۱۱)

پانچوں سے من بندھیا پھر پھر دھرے شریر  
 جو یہ پانچوں بس کرے سوئی لاگے رقیمر (دکیرا)

سمند  
 ۵۷  
 ۹

ہی ناٹھ بر بہم پریشور نہ تو میں نے اپنے آپ کو اور نہ تو میں



نئے سمیورن برائوں (میں آپ پریشور) کو ایک ملے سے جانا۔ ہمیشہ سے  
 ہی ایسے اس ایک ہی شہر کو درشت میں رکھا۔ تم ہی میں اور میں ہی  
 تم (ارتھت سمیورن پرانیوں میں ایک ہی پریشور) کا ملاپ کرنا نہیں  
 جانا۔ ہی تو بڑا بھاری سند ہے کہ تم کون اور میں کون ہی۔  
 یہ زمان۔ جس وقت پر ہم پریشور کو بھلی بھانتر جاننے والے  
 ہمارے شہر کے اچھے سمیورن پرانی پر ما تم سرورپ ہی ہو چکے ہیں اس  
 ادستھا میں ایک کا ارتھت پریشور کا ترنتر سا کھشت کرنے والے ہمارے  
 کئے کئے کون سا شہر اور کون سا موہ رہ جاتا ہے اس وقت وہ ہمارے  
 پرانند سے پرہ پوزن ہو جاتا ہے (ایشن اپنشد - ۷)

سخت  
 ناند پورس اٹھ گنڈ ڈول گوم  
 دن کارمل گوم ہیکہ کوہ ہم  
 گورسند ون راؤن قبول بیوم (۱۰)  
 ہیکہ رست قبول گوم ہیکہ کوہ ہم  
 میرے کدھے پر سات والی بوجھ کی کا تھ ڈھیلی ہو گئی اور میرا  
 دن کا رٹھا ہو گیا۔ اب یہ بوجھ کس طرح اٹھا سکوں گی۔ گورو کا ہنار اپنکار  
 روٹھا) نہر بلا پھوٹا ہو گیا اور میرا رٹھا گڈریا کے بغیر ہو گیا۔ اب یہ بوجھ  
 کس طرح اٹھا سکوں گی  
 ویا کھیا۔ میرے کدھے پر بوجھ کو سو بھانتر جھٹی پرانند کے پاس  
 بروی سات والی بوجھ کی کا تھ ڈھیلی ہو گئی اور ساتھ ہی اس بوجھ کے  
 نیچے سہارا رکھے والا (ارتھت) ارتھت میں کا درتھو اٹھنے والا دیر کا

ڈنڈا ٹیٹھا ہو گیا۔ بھلا اب یہ بوجھ میں کس طرح اٹھا سکوں گی (یہ کیوں ہو گیا)  
 جب کہ ہنکار اور گھنڈ کر کے گورو ہمارے کا اپنیش شہر میرے من اور انہر  
 کونوں میں نہر بلا پھوٹا ہو گیا اور پھر یہ میرا رٹھا۔ ارتھت چھل  
 من سے بھکت بندریوں کا رٹھا۔ دش میں نہ رہنے والے (اسا ددان سارنھی  
 کے بھانتر) بغیر گڈریا کے ہو گیا۔ بھلا ستاؤ اب میں یہ بوجھ کس طرح اٹھا  
 سکوں گی۔

یہ زمان۔ گیانی جن اس پر مار تھ مارگ میں بندریوں کو گھوڑے اور  
 دشتیوں کو اُن گھوڑوں کے دھرنے کے مارگ بتلاتے ہیں تھ شہر پر بندری  
 اور میں ان سب کے ساتھ رہنے والا جیو آتا ہی بھو کھنڈ ہے ایسا کہتے ہیں۔  
 جو سدا دیک ہیمن بدھی والا اور چھل میں سے بھکت پرانند ہی کی  
 بندریاں اسا ددان سارنھی کے درشت گھوڑوں کی بھانتر دش میں نہ  
 رہنے والی ہو جاتی ہیں (کپھ اپنشد - ۳-۵)

سخت  
 پچوہ ہارنجہ پرتی کان گوم  
 ایک بھان پچوم پچوہ راؤ دا لے  
 منتر باگ باؤ کس کلہ رٹس دن گوم  
 تیر تھ رست پان گوم کس مالہ زلے (۱۱)  
 اس میرے کزورنگری کے دھن میں پچٹی کا بان ہو گیا۔ اور اس میرے  
 راہر دانی میں دیک ہیمن بدھی والا نا تجربہ کلہ ترکان پڑا۔ یادار کے  
 میں میرا دکان تالے کے بغیر ہو گیا۔ میرا شہر تیر تھ سے رہت ہو گیا۔ سات  
 کون جاتا تھا۔



دیا لکھیا۔ اس میرے دو ایک ہمیں بدھی والے کمزور لکڑی کے دھنک  
میں یہ میرا (آپاسنا کا) بان پڑی کا (گھاس جس کی چٹائی بناتے ہیں)  
جوگیا (بھلا یہ کیوں ہو گیا) جب کہ یہ بیٹو آتما روپی وویک ہمیں بدھی  
کا ترکان ارتھات اپنا ہی آپ اس شریہ روپی راجہ دانی سدھارنے میں  
لگا۔ اس لئے پھل من سے ٹیکھت بندریوں کے دوش میں نہ رہتے پر مالے  
بازار کے بیچ میں اس راجہ دانی میں یہ میرا مکھ وانی کا دوکان۔ دن اور  
مون کرنے کے تالے کے بغیر ہو گیا اود اس کے ساتھ ہی یہ میرا شریہ  
ترتھ ہمیں ارتھات ادھیائتم گیان اور ویدا سے رست ہو گیا۔ تات (ایسی  
درگتی کی حالت ہو جانے کی) کون جانتا تھا۔ بھاؤ یہ ہے جس وقت کہ  
یوگی کی یوگ بدھی ہو جانے پر گیان درشتی کھل جاتی ہے۔ مورکھ  
اور بل ہمیں یوگی مان اور بڑھائی ہوئے پر کرامتیں کرنے لگتا ہے  
(ارتھات اس اپنے شریہ روپی راجہ دانی کے مکھ کو مون روپی تالا نہیں  
لگاتا) اسی طرح آہستہ آہستہ اپنا سارا یوگ بل خرچ کر کے کھو بیٹھتا  
ہے اور پھر اپنے یوگ مارگ سے نیچے گر جانے پر وہ ادھیائتم گیان  
سے رست اور ویدا ہمیں بن جاتا ہے۔ دھار میں آتے ہیں یہ دو تین  
دیکھ رہی ہیں یوگیوں کو سمجھانے کے لئے درجن کئے ہیں۔

پرمان۔ اپنشد میں دربت دھیان یوگ کا درجن۔ پروف روپ  
ہاں استھ دھنک کو لے کر اس پر لکھیئے درھتھ کے آپاسنا کا تیکھن  
کی ہوا بان پڑھائے۔ بھاؤ پورن چت کے دوا اس بان کو رنج  
رنج کر ہی پائے اس پریم اکھر پر برہم کو لکھیا مان کر مید دے۔  
اوم سر ہی دھنک ہے۔ اپنا آتما ہی بالہ ہے۔ پر برہم پریشور ہی

اس کا لکھیا کہا جاتا ہے۔ پرما سے رست منش دوا رہی یہ میدا  
جانے یوگی ہے اور اسے مید کہ بان کی طرح اس لکھیا پر ماتا میں  
تن میں ہو جانا چاہیئے (منڈوک اپنشد ۲-۲)

سمندر یہ کیا آہست یہ کیوت رنگ گوم  
بے رنگ کرت گوم لکھ کر شاٹھ

تالہ راز داہر ایک پھان پوجوم

جان گوم زونم بان پننوسی (۱۲)

دیکھو یہ (نروکار آتما) کیسا شو بھایان ہوتا ہے مگر تھے یہ کیسا  
(اٹل) رنگ ہو گیا۔ یہ تو اپنا ہی بے رنگ (آتما دیت بھلاؤ کا رنگ)  
کر کے چلا گیا۔ اب میں اس بھوہ سر کے (کس شاٹھ پر رنگ جاؤں گی۔ اس  
میرے راجہ دانی کے اوپر سیلنگ لگانے کے لئے وویک ہمیں بدھی والا  
نا تجربہ کار ترکان پڑا۔ یہ بھی اچھا ہی ہوا کہ میں نے اپنے آپ کو دگیان دھار  
سے جان کر سمجھ لیا۔

دیا لکھیا۔ دیکھو یہ نروکار آتما نلیہ شاشوت اور استھیر میں دستو  
کے نلیہ کیسا شو بھایان ہوتا ہے تھے یہ کیسا اٹل رنگ ہو گیا۔ یہ تو  
تھے اپنا ہی بے رنگ آتما دیت بھلاؤ کا رنگ چڑھا کر کے چھپ کر چلا  
گیا۔ بھلا اب میں اس سنار سدر میں پڑی ہوئی ترشتا روپی مگر تھے سے  
پکڑی ہوئی بھنوروں سے دھکے کھاتی ہوئی نہ معلوم اس سندر کے کس  
شاٹھ (ریتلے کن سے) پر جا لگوں گی (بھلا یہ کیوں ہو گیا) جب کہ یہ نا تجربہ کار  
مورکھ بیٹو آتما روپی وویک ہمیں بدھی کا ترکان ارتھات اپنا ہی آپ۔ اس



شریر بیوی راجہ دانی کی سہیلنگ (یعنی اوپر والا چھت) ارتھات اس  
مستش شریر روپ پر مشور کی راجہ دانی سداہارنے میں لگا۔ یہ بھی  
اچھا ہی ہوا کہ میں نے اپنے آتم سرور کو دگیان دھار سے جان کر بچان ڈالا۔

سیند  
بل پین  
ریگی کے  
چیا  
کارن

نمبر پے بس کوہ نو ترا جن

میں ریش کوہ اوہو تاجن گوسن

شانتین ہنتر کرے تولہ موہن ورجن

اندرم گاہ بلہ ہنتر ہنترس (۱۳)

اگر کسی فتن کو (یوگ سدھی کی) جھگڑا بن کر پڑی تو کیوں اس نے  
سوداشت نہ کی (ارتھات دین اور لون کر کے کیوں نہ بیٹھا) کیوں اس کو  
اس یوگ مستی کا سرور اٹے ناڑیوں میں چلا گیا۔ اس نے تو شانت سرور  
یوگیوں کے کریم مارگ کا تولہ اوہول ہی گھسا دیا جبکہ اس کے اندر کا  
یوگ پرکاش باہر بھٹ کر نکل پڑا۔ رتھات کراماتیں کر کے سب کچھ خرچ  
کر ڈالا۔

پرمان۔ دین کرنے والوں کا ڈنڈ ارتھات دین کرنے کی شکتی میں  
ہوں۔ وجہ چاہئے والوں کا تیلے میں ہوں گیت رکھنے بیگیہ بھاؤں  
میں مون میں ہوں اور گیان دانوں کا گیان میں ہوں (گیتا ۱۰/۲۷)

سیند  
کاٹلا اک دچھم بوجھ سیتی مران

پن زن ہران پوہ نے دادہ لہ

ریش بدھ اک دچھم وازس ماران

تہ کل بوہراران ترپونم ہ پوہ (۱۲)

(اپنے آپ کو بدھمان ماننے والا) ایک دودان کو میں نے پوہ

میں ہوا کے مقولی سرش کے بلنے پر درجوں سے سے کر کے سمان (دوشیہ

داسناروپی) ایک بھوک سے مرتے دیکھا اور ایسا ہی ایک (جان بوجھ کر

بنا ہوا) مورکھ کو میں نے اپنے (کامنا روپی من کے) باورچی کو مارتے

پٹتے دیکھا۔ اس دل سے میں ایسی کھیتی کے پرکھ لینے (ارتھات جان

لینے) کے انتظار میں پڑی ہوں لیکن ابھی تک میرے من کے سر پڑا ہوا

وہ پراہ ارتھات سرش دور نہیں ہوا۔

کینٹرن دیوتھم اودے آ لو

کینٹرو رٹھی نالے ونھ

کینٹرن ہنس چھتھ اچھ لچہ تالو

کینٹرن پیت گے مالو کھت (۱۵)

(۱) کہیوں کو تو ادھر سے ہی آواز ماری (۲) کہیوں نے (ونھ) دریا

کگلے تاک پکڑے ہی رکھا کہیوں کو یوگ کا مس پی کر آنا نہیں آد پر کے

اور نگ گئیں (۴) کہیوں کی کھیتی یک کر ٹڈی دل کھا گئے۔

دیا کھیا۔ ہی برمانہ دیو کہیوں کو تو آپ نے ادھر سے ہی ارتھات آ

کے پروا بھاس کے یوگ بل سے ہی آواز ماری۔ وہ تو پھر بھی یوگ مارگ کے

طرف ہی کھچے گئے اور کہیوں نے ترگہ ویشاک سورگ آدہ کا مادل کے وید

شاستروں کے ساگردوں کو کھلے تک پکڑے ہی رکھا (ارتھات سورگ آدہ مسکھ



پراپتی کے کامنا دلے دیدن انتر پہنچتے اور دیکھتے ہیں اور کہیںوں نے پر مار تھکا یوگ مس پی کر ان کی آنکھیں اوپر کی اور گیان روپی غیرتوں سے پریشوس کے سرو دیا پلکا کا جھکا دیکھنے کے طرف ہی لگ گئیں اور کہیںوں کی یوگ روپی کھیتی پلکنے پر منش روپی ٹڈی دل کھاپی کر چلے گئے۔ ارتھات کرا تیں کر کے اپنی ساری یوگ کی تہی ہوئی کماٹی خرچ کر ڈالی۔

پرمان (۱) گیتا ۳/۴۸ کو پڑھ کر دھار کریں۔ دن ہی ارجن دیدل کے ترکش ویشیک کرم کا نڈکے چل شرنتہ میگھت واپیوں میں بھولے ہوئے اور یہ کہنے والے مردھ لوگ کراس کے سوا دوسرا (کرم) اور کچھ بھی نہیں ہے۔ بڑا۔ بڑا کر کہا کرتے ہیں کہ ایک پرکار کے مقام کرموں سے ہی پھر جنم روپی چل ملتا ہے۔ سو رگ آدھ کھکے پیچھے ہی پڑے ہوئے فے کامنا کے بدھی والے لوگ جھوٹا اودا سنواری میں ہی ڈوبے رہتے ہیں۔ اس کارن سے ان کی نشیئے آتمک بدھی سادہ یوگ کے طرف نہ پھر کر سیکھ نہیں رہتی۔ اسی کو ایشوری نے نالے دھکھ کھلے اور اسی کو شر و تر ساگر کہتے ہیں (گیتا ۳/۴۸) اوپر کی اور دیکھتے رہنا گیتا ۳/۴۸ کے اندر پڑھ کر دھار کریں۔

کنہہ چھٹی بند رہ، متی و دی

کنہن دینا نسر بیٹی

کنہہ چھٹی ستان کرت اپوتی

کنہہ چھٹی گرھہ بربت تہ اکری (۱۶)

کہیں چلن شیل منش ندرالو جیسے بن کر پرارتھ مارگ کے جاگرت میں بیٹھے

ہیں اور کہیں ہوشیار دیدن انتر جاننے والے پڑھانوں کو (کامناؤں میں پڑ کر اس پر مار تھکا کی طرف) گہری بند پڑی ہے اور کہیں تیرتھ اتیادہ ستان کر کے بھی اندر سے آہو پھر ہی ہیں اور کہیں گرمیت آشرم کے دندے کر کے بھی (بانی میں مکمل کی طرح) کرموں کے شجھ اور شجھ بندھنوں سے نریلپ ہی ہیں۔

کنڈ لو گر گھر تیزہ کنڈ لو دلو اس

پتھوئی پھک تہ تیو تھی اس

منس دھیر رٹھ سا نسرک سو اس

کیا ہ پھوئی ملن سور تے سا اس (۱۷)

کہیں نے گھر ہی تیاگے اور کہیںوں نے دلو اس میں ہی تات تم جیسے ہو۔ دیسے ہی بنے رہو گی۔ من میں دوڑھ لپچھے دھارن کر اسی سے تم کو (سو دس) اپنے انتر آتمک کے ساتھ ملاپ ہوگا۔ کس کر کے تم نے یہ راکھ اور مٹی ملنے ہے۔ دیا کھیا۔ کہیں پرشول نے اودیا اور گیان سے گھر اور گرمیت ہی تیاگ دئے اور دلو اس چلے گئے اور کہیںوں نے دلو اس کو بھی تیاگ دیا۔ ہی تات جیسا بھی پر کر تہ سوبھاؤ لپچھے آتمک بدھی اور شر دھا ہتا ہے میں تم سے دیسے ہی بنے رہو گے۔ اپنے من میں پر ماتما کے سادھن کرنے میں دوڑھ لپچھے اور دھیر دھارن کر اسی سے تم کو (سو دس) اپنے سروپ ارتھات انتر آتمک کے ساتھ ملاپ ہوگا۔ کس کر کے تم یہ گرمیہ تیاگ اور دلو اس کی گندی راکھ اور مٹی مل رہا ہے۔

پرمان۔ ہی ارجن سب پرانیوں کی شر دھا ان سے اپنے اپنے پر کر تہ



سو بھاؤ کے اوسار ہوئی ہے مٹش شر دھا مٹے ہیں کی جیسے شر دھا ہوئی ہے وہ سویم ویسا ہی ہوتا ہے (گیتا ۱۶)

سمبد کالن کال زول بدوئے ثری گول

وندو کہہ وا وندو دلداس

زانہ سرودہ گتھ پر بھو انمول

ریتھوئی زانک ہو تھئی اس (۱۸)

بدو (ثری) داسا گل گئی تو اسی سمے نے کال کو چلایا پھر تم لوگ گڑھت کو چاہو اٹھو ان میں اس کو۔ یہ جان کر کہ پر بھو سرودہ کہہ امول ہے جیسا جانو گے۔ دسے ہی سے رہو گی۔

و ما کھیا بدو اٹھائے کو پرمانا کی سا دھا کرتے کرتے سارے داسنا میں گل گئیں تو جان لو کہ اسی سمے نے ہمارا کال ارتھات جنم و مرن آدا گن روپی پر کرتہ بندھن کو چلایا اس سمے پر تم لوگ گڑھت میں رہو۔ اٹھو اوہ میں جاکر رہو۔ یہ جان کر کہ پر بھو سب کا سوا ہی دین دیال پریشور تلنا آدہ سے بہت سمیڈورن پرمانند میں ویاپک اور گتھ کرنے والا ہے۔ اس سمے پر بھی جیسا جیسا کہ اس پر بھو پر پریم کو جان لو گے ویسا ویسا ہی پرمانند روپ گیان میں مگن سے رہو گے۔

ثرہ نا بو نا دیسی کا دھیان

گیہ پائے سرودہ کرے مشیت

انیا رڈ پو ٹھک کنہہ تا آئی

گئے ست لئے پر پشیت (۱۹)

نام۔ نامیں اور نہ یہ سارا پریم اور نادھیان۔ آپ ہی آپ۔ حق کر یا میں بھول گئیں۔ کہیوں نے اس (آتم تو) کے طرف دیکھا تک بھی نہیں وہ تو اندھے ہی رہے (اور نہ ہی اس پریم تو کو دیکھ کر اسی کے ساتھ لئے ہوئے۔)

دیا کھیا جس وقت کہ لوگی کو سا دھا کرتے کرتے تم اور میں۔ دھیان اور یہ سارا مایا کا پسارہ نہ مول گل جائے گا۔ ارتھات سب دیت بھاؤ گل جائے گا یہ کہ پرمانند سروپ ہی سب جگت بھاس آئے گا تو سمجھ لو کہ اس وقت آپ ہی آپ سب کر یا میں بھول گئیں۔ کہیں پریشور نے اس آتم تو کے طرف دیکھا بھی نہیں۔ ارتھات اس (آتم) کے جانے کا دھار ہی نہیں کیا وہ تو اس آتم گیان سے اندھے ہی تھے اور نہ ہی پریشور نے اس پریشور پریم تو کو دیکھ کر اسی کے ساتھ مل کر لئے ہوئے۔

سمبد کو نرے بو زک کو نہہ نو روزک

کو نرن کو زغم کو نیا کار

کنوی است دون ہند جنک گوم

سوئی بجے رنگ گوم کرت رنگ (۲۰)

جس وقت کہ تم ایکٹا کو جان لے گا تو تم کہیں بھی نہیں رہے گا۔ اسی ایکٹا کے دھار کرتے نے مجھے ہانی کار کر دیا۔ وہ تو ایکٹا ہی سب میں استھت ہے مگر میرے بیتردو کی لڑائی ہو رہی ہے۔ کیا کروں۔ وہی بے رنگ مجھے (دیت بھاؤ کا) رنگ کر کے چلا گیا۔

دیا کھیا جس وقت کہ تم لوگ سدا ہی ہونے پر سمیڈورن پرائیون اور



پر ماتا کو ایکنا سے جان لیگا اس وقت تم کہیں بھی نہیں ہے گا۔ ارتھات پر ماتم  
سر وپ ہی یہ سارا جگت بھاس آئے گا پھر تم دوسرا کون اور کہاں کا ٹکھرا۔  
اسی ایکنا کے سوچنے نے مجھے مایا کار کے پھوڑ دیا وہ پر ماتا تو ایکلا ہی  
سب میں سمجھتے مگر میرے میں دیت بھاؤ کی لڑائی ہو رہی ہے۔ کیا کروں  
وہی بے رنگ اپنا ہی آتما مجھے مایا سے رنگ کر دیت بھاؤ کا رنگ  
کر کے چھپ گیا۔

پرمان۔ جس وقت کیوں کو ہمارے گمان کے ہو جاتا ہے اور درشتا  
ارتھات پر ماتا کو ہی ایکوت سے دیکھنے والا درشتا پن کے روپ میں نہیں  
رہتا یہ کہ وہ بھی سویم برہم میں لین ہو جاتا ہے تب میں پن کا ناش ہو جاتا  
ہے اور میں پن کا ناش ہو جاتا ہی اچھو کا نکھن ہے۔ اسی کارن سے اس  
اوستھا کو ابرو اچھہ سادان کہتے ہیں کیونکہ جب میں کچھ رہا ہی نہیں گیا  
تو سادان کا درن کر گیا کون (داس بود ۱۲/۱۶)

یہ کیا آست یہ کیوت رنگ گوم  
سنگ گوم تریت ہند نے دگے  
سارنی پدن گنڈی کو نکھن سووم  
لکہ مہ ترانگ گوم لکہ کہہ شاخے (۲۱)

دیکھو یہ (میرا نروکار جو آتما اب تک پر کرتہ گنوں میں بندھا  
ہوا) کیسا سمجھ تھا۔ مجھے اب یہ کیسا (شو بھایمان) رنگ ہو گیا۔ وہ  
تو میرے ہند بیکھی کے چوچیں مارنے کا سنگ کاٹ کر چلا گیا۔ اور سارے  
پدوں کو ایک ہی نکھن بن کر پڑا۔ اور تجھ تل کے بیتر تراگ ہو گیا۔ اب

کس شاٹھ پر لگ جاؤں گی۔

دیا لکھا۔ دیکھو یہ میرا نروکار جو آتما نیتہ شاشوت ہونے پر بھی  
دشپہ آسکتی ہے کارن پر کرتہ گنوں میں بندھا ہوا اب تک اگان اندھکار  
کے بیتر کیسا سمجھ تھا۔ اب مجھے یہ ایکنا کا کیسا شو بھایمان رنگ ہو گیا  
(مال) اب ہی اس میرے پر میثور (انتر آتما) نے میرے ہند بیکھی ارتھات  
جو آتما کے کرم روپی پھلوں کو چوچیں مارنے کے سنگ کو کاٹ دیا۔ ایسا  
بھاؤ ہونے پر میرے کو سارے دید شر دتوں کے پدوں کا ایک ہی اوم  
روپ نکھن (تعلیم) بن کر پڑا اور تجھ تل کے ہر دے میں سب ہی کچھ  
سما جانے والا (تراگ ارتھات) ٹھنڈا امن امرت سے بھرے ہوئے گنڈ  
کے سماں ہو گیا۔ اب میں کس (شاٹھ) سمجھان پر لگ جاؤں گی۔

پرمان۔ (ہند بیکھی کا) ایک ساتھ ہونے والے تھا پر پسر سو بھاؤ  
رکھنے والے دو بیکھی (جو آتما اور پر ماتا) ایک ہی دیکھ (شریر) کا  
آشر یہ لے کر رہتے ہیں۔ ان دونوں میں سے ایک بیکھی (جو آتما ارتھات  
ہند) اس شریر روپی دیکھ کے کرم روپی پھلوں کو سادھ لے لے کر  
اپہ بھوک کرتا رہتا ہے۔ کنتو دوسرا بیکھی (پر ماتا) کچھ بھی نہ کھانا ہوا  
کیوں دیکھتا ہی رہتا ہے اور بیکھت شریر روپ سماں دیکھ پر رہنے  
والا جو آتما۔ شریر کی گہری آسکتی میں ڈوبا ہوا۔ آتما تھ دینا کا انہو  
کرتا ہوا سنا کے موہ میں موہت ہو کر شوک کرتا رہتا ہے جب کبھی  
پر میثور کی دیا سے جگتی کے دارا پر میثور کو اور ان کی ہما کو پر بھک  
کر لیکھے تب سب کرم پھلوں کے چوچیں مارنے اور شوک موہ سے  
رہت ہو جاتا ہے (منوک پنشہ ۱۳/۱۶)



مرجائے بددے تیار ما  
 می دمی ہر دم خبر از بار ما  
 (یوعلی قلندر)  
 (سلسلے بدوں کا پرمان) ہی ازین جب تیری انیک پرکار کے دید  
 اور شاستروں کے مسداتوں کے سننے سے وحیت ہوئی بدھی پرمانا کے  
 سروپ میں ہی اہل اور پھر ہو کر ٹھہر جائے گی تب یہ ستم بدھ روپ یوگ  
 تجھے برات ہوگا (گیتا ۱۰) (تراگ ارتھات امرت کنڈ) چاروں اور  
 سے مانی آجائے پر جس طرح سندر گیت مانت بھی نہ بڑھتا ہے نہ گھٹتا ہے  
 نہ چلا بہان ہو نہ ہے اور نہ اپنی مریدا چھوڑتا ہے اسی پرکار جس پرش  
 میں سائے دے کوئی بھی وکار نہیں نہ کر کے اس کی شانتی بھنگ کئی  
 بنا ہی اس کے پتر سما جاتے ہیں اسی کہ پرش شانتی برات ہوتی ہے وشیوں  
 کے کامنا واپے کو نہیں (گیتا ۱۰) گیانی کا ٹھنڈا من امون بھرے  
 گند کے سمان نہ لاکھ کا اچھلاشی ہے نہ مانی کا سوچ کر تاپے (شری  
 ارشما وکر گیتا ۱۸/۸)

نیک کا آپ  
 ہی اپنے  
 کو بھلا  
 (۲۲)  
 سنا ہی لوگ ہر ایک تیرے کے اور پرمانا کا ملایا ارتھات موکش  
 کے اچھلا شاسے جایا کرتے ہیں۔ ہی میرے جیت (اس ادھیائے ویدا کے  
 نازک کرے بدھ اور جان کر (ان تیرے قیوں کے چل خروٹہ ویکوں بھی)

شیت نہ ہو بھنگ نہ جا (اس آتم سادھنا کے تلیہ میں یہ تیرے ایسے ہیں  
 جیسا کہ) تم دور سے پرتھوی پر چڑھے ہوئے سبزہ زار بہت بنے (گہرے  
 اور خوش نما) دیکھ لو گے۔

برمان - گنگا تیر جو گھر کرے ہوئے نرمل نیر  
 بن ہری سمن گنگی نہ یوں کہ گنگا دس کبیر (کبیر)

جانتا  
 ہے  
 برا بھلا  
 نا تھو یہ نو رانی منگے  
 مہ راؤن راج کرم کیا  
 یہ گوم لیکھت تہ سید ما ہرم  
 ہرم - ہرم تہ ہرم - کیا (۲۳)  
 ہی نا تھو پریشور میں رانی بیٹا نہیں مانگوں گی۔ تجھے یہ راؤن کا راج  
 میں کرے گا۔ جو کچھ بھی میرے کو لکھا گیا وہ مل نہیں سکتا۔ ٹیٹکا ٹیٹکا - نو  
 پھر ٹیٹکا کیا

و ما کہیا۔ ہی میرے نا تھو پر ہرم پریشور میں آپ سے راج رانی جی  
 بدوی نہیں مانگوں گی۔ تجھے یہ راؤن کا جیسا ناخوان و مثال راج کیا  
 لاکھ کرے گا۔ جو کچھ بھی میرے ماتھے پر ہرم بد کا آؤ لٹ لاکھ لکھا گیا ہے  
 وہ تو کبھی مل ہی نہیں سکتا (۱) تو کیا ایسے راؤن کے و مثال اور ناخوان راج  
 شکھ سے یہ آدگن جنم و مرن کا کشف مل سکے گا ارتھات نہیں مل سکتا  
 (۲) تو کیا ایسے راؤن کے راج سے ادھمک - ادھونک اور دھوک یہ تینوں  
 سنا کر کے تاپ مل سکے گا۔ ارتھات نہیں مل سکتا (۳) ہی نا تھو پریشور جو  
 آپ ہی تپاؤ تو کون سا شوک اور موہ مل سکتا ہے تجھے یہ سب کچھ راج شکھ



ایسا وہ نہیں چاہتے اپنے ہی پاس رہنے دو۔

(سمواد) اس واقعہ کا پرمان بھگنے کے لئے پہلے ہم بچہ کیت اور یم راج کا سمواد لکھتے ہیں۔ دس بارہ سال عمر کا بالک بچہ کیت اپنے باپ اودالک رشی کے شاپ دینے پر اسی دیہہ سے یم بڑی میں جاتا ہے۔ یم راج گھر پر نہ ہونے کی وجہ سے بچہ کیت میں دن تک بھوکا یم راج کے گھر پر رہتا ہے۔ یم راج کے پہنچنے پر تیسرے دن یم راج بچہ کیت کو تھکوی بہن جان کر ادگ پاد دیکر پوچھا کرتا ہے۔ اور تین دن بھوکا رہنے کے بدلے تین ور مانگنے کے لئے بچہ کیت سے یم راج کہتے ہیں۔ بچہ کیت یم راج سے دو ور پاکر تھیسرا ور آتم گیان کے ایلین کرنے کا مانگتا ہے۔

پرمان۔ یم راج تیسرے ور آتم گیان کے بدلے کہتے ہیں کہ ہی بچہ کیت سینکڑوں ورشوں کی آلو والے بیٹے اور پوتوں کو ادھر بہت سے گنوا اور پشوں کو ہتھی گھوڑے اور سونا مانگ لو۔ پر تھوی کے بڑے چکر ورتی راجہ بیٹے کو مانگ لو اور تم سویم بھی جتنے ورشوں تک چاہو جیتے رہو۔ ہی بچہ کیت دن بیتی اور امنت کال تک جیتے کی سادھنوں کو بدھ تم اس آتم گیان کے سمان ورمانتے ہو۔ تو مانگ لو اور تم اس پر تھوی لوک میں بڑے بھاری سمرٹ بن جاؤ تمہیں سمبورن بھوگوں میں سے آتم بھوگوں کو بھجو گئے والا بنا دیتا ہوں جو جو بھوک منش لوک میں درلب ہیں ان سمبورن بھوگوں کو اپنی اچھیا کے اوسار مانگ لو۔ رتھ اور نانا پرکار کے باجوں کے سہت ان سُرگ کی آپسراؤں کو اپنے ساتھ لے جاؤ ورشوں کو ایسی استریاں ملنی بہت ہی درلب ہیں میرے دوا دئے ہوئے ان استریوں سے تم اپنی سیوا کروادو۔ ہی بچہ کیت مرنے کے بعد آتما کا کیا ہوتا ہے۔ اس آتم گیان کی بات

کو مت پوچھو بچہ کیت دایس کہتے ہیں کہ ہی یم راج جن کا آپ نے ورش کیا ہے۔ ویسے سب تاشوان بھوک انتہ کرن سہت سمبورن پندریوں کا جو بیج ہے اس کو کھیل کر ڈالتے ہیں۔ اس کے ہوا سارے آلو چلبے وہ کیتی بھی بڑی کیوں نہ ہو۔ ایل ہی ہے۔ اس لئے یہ آپ کے رتھ اپنا درہ دارین اور یہ آپسراؤں کے مانج گلنے آپ کے پاس ہی رہیں جتھے نہیں چاہے جتھے تو وہی آتم گیان پر مہید کا ور چلبے تے توگ و مشوری نے یہی بات اس واقعہ میں سمجھائی ہے کہ دیکھو یہ آتم گیان کتنا درلب ہے۔ اس کے پیچھے ادھیائے ۲۔ واقعہ ۲۳ سُرگ راجہ کا پرمان بھی پڑھنا و جاننا ہے۔

۴ (کہا آپسراؤں)

شودا۔ ریشو وا۔ جی وا۔

کلیج ناتھ نام۔

72

مہ۔ ایلہ کیستین بھوہ رز

(۲۴)

شودا۔ شودا۔ شودا۔

(سمبورن جگت کا آدہ کارن سواہی) شو۔ ہو۔ اٹھوا (ریشو) جوشو  
جھکوان ہو۔ اٹھوا (جن) جگت رچتا برشت کرتا رہتا ہو۔ اٹھوا ہر دہ مکمل  
میں دس کرنے والا سُرگ آتمک پر مشور جو کلیج ناتھ ایسا نام دھارن کرتے  
ہیں۔ وہ ہو۔ جھکم عقل استری کو برسنارہ رڈی آدگن اٹھات جھم و مرن  
کی راجہ کاٹ تو دیوے۔ چاہئے وہ شو ہو۔ اٹھوا۔ وشنو ہو۔ اٹھوا۔ رہما  
ہو۔ اٹھوا آتمنے ناراینائی کلیج ناتھ ہی ہو۔



## چوتھا ادھیائے

لاچارہ بچارہ پرواد کو روم  
تدڑ چھوہ تہ رہیو  
فیرت دوبارہ جان ریکہ و نم  
پران تہ روہن رہیو (۱)

جھنے کس بچاری نے (پرواد کو روم) لوگوں میں بہت سادے  
آوازیں ماریں کہ یہ کل تک بھی نہ ٹھہرنے والا (تدڑ) ناپائدار نام کی  
بھری ہے اسے خرید لو (ایسا ہی گھومتے گھومتے) پیشچات اس دشنے  
سے بھر کر دوسرے بار میں نے کیسا ہی اچھا کہا۔ یہ کہ پران اور روہن  
کو خرید لو۔

دیا لکھیا۔ جھ لاچارہ ارتھات اشترتھ اور دینتا کا انھو کرنے والی  
بچاری نے لوگوں میں بہت سادے آوازیں ماریں کہ یہ سبنا۔ دیا رجت۔  
ارتھ۔ ناشوان۔ سوہن کی دستو گندرونگر اور مرگ ترشتنا کے جل کے  
جات (تدڑ) کل تک بھی نہ رہنے والا ناپائدار ہے اسے خرید لو۔ پیشچات  
اس دشنے سے بھر کر ارتھات سبنا کے کامناؤں کو تیاگ کر دوسرے  
باز میں نے کیسا ہی سندروہن کہا کہ پران اور (روہن) دوسرے پران  
دیلوں کے چن چن بھیدوں کو خرید لو۔ ارتھات پرانوں کے رہسید کو جان  
کرائن کا بیون کر۔

پرمال۔ شریہن رہنے والا پرنش (بیو آج) گہری آسکتی میں ڈوبا  
بوالاچار اشترتھ ہونے کے کارن دینتا پورک موہرت ہوا شوک کرتا

ہوتا ہے۔ جب کبھی بھکتی سے آپا سنا دوارا پریشور کو اور اس کی آسچریہ  
مئے ہما کو برتھک دیکھ لیتا ہے تب سرودہ تا شوک سے رہت ہو جاتا  
ہے (شویتا شتر پرنش) پران کو موکھیہ بران کہتے ہیں اور روہن  
کو آیان۔ سمان۔ دیان اور آدان جاتو (پران کے آہن ہونے کو آگ  
سٹھان اور دیان پکنا کو تنھا ادا نمک پانچ بھیدوں کو ابھی پرکار جان  
کرمش امرت کا انھو کرتا ہے (پرشن اپنشد ۱۲) ان پانچ پرانوں  
کی گتی کو پرشن اپنشد ۳ میں دیکھیں اور پرانوں کے بن بن بھیدوں  
کو اگلے واکیر ۶ کے پرمان کو پڑھیں۔

پران تہ روہن کنوی روم  
پران برت لہ نا  
پران برت کنہہ تن کھ زے  
توئے لوم سو اہم (۲)

میلنے پران اور روہن کو ایک ہی جان لیا۔ پرانوں کے سرودھ کرنے  
پرمنش کیوں نہ (پریم پد کے) مارگ کو پراپت کر سکے گا۔ پرانوں کے سرودھ  
کرنے پر کچھ بھی نہ کھانا۔ تب ہی۔ میں نے سوہم پد پرماتما کا مارگ پراپت کیا  
دیا لکھیا۔ میں نے پران اور روہن (ارتھات آیان۔ سمان۔ دیان اور  
آدان کو ایک ہی تنو جان لیا۔ ان پرانوں کے رہسید کو جان کر ودھ پورک  
پرانوں کے سرودھ کرنے پرمنش کیوں نہ اپنے تنو سوہم پد (پریم پد) مارگ  
کو پراپت کر سکے گا۔ پرانوں کے سرودھ کرنے پر اس سے پہلے پر کچھ بھی  
نہ کھانا (ارتھات ہرمنے اس سے پہلے ہی پران ابھیس کی ودی سے  
آہ کرنا) تب ہی ارتھات اد پریکھت پرافول کے ودی کو جان کر ابھیس  
کرنے پر میں نے سوہم پد۔ پرماتما کا مارگ پراپت کیا۔



یون تہ پزان سو مٹی دیو کھم  
میلت رو دم بشر کھور تان  
دہمہ بلہ مو کھم ادہ کیاہ مو تم  
نہ کنہہ یون تہ نہ کوئے پزان (۳)

میں نے یون اور پزان ایک سمان دیکھا۔ یہ مجھ میں سر سے پاؤں  
تک مل کر رہا جب کہ مجھے دہمہ ہی بھول گیا۔ تو شیش کیا رہا۔ نہ تو کہیں  
یون ہی رہا نہ تو کہیں پزان ہی۔

دیا کھیا۔ میں نے یون اور پزان کو ایک ہی سمان دیکھا۔ یہ پزان  
دایو میرے شر میں سر سے لیکر پاؤں تک مل کر دھرتے رہا۔ پزان ابھی اس  
کوتے کرتے پزان دایو کے جتنے پر جب کہ مجھے اپنا ہی دہمہ بھول گیا۔  
تب شیش کیا رہ گیا۔ ارتھات پھر نہ تو کہیں یون ہی رہا اور نہ تو کہیں  
پزان (پرماتلے جس وقت منش شریر بنایا۔ اسی وقت دایو دیوتا۔ پزان  
بن کر ماسکا کے چھدروں میں پردیشٹ ہو گیا۔ ارتھات پزان اور دایو ایک  
ہی ہے دیکھو۔ ایتر یو اینشد ۱۲)

پزانس پیتی لے بلہ کرم  
دھیانس تھونم نہ روزنس شانے  
کائیس اندر سو روی و جھم  
پائیس پو دم کد مس گرانے (۴)

جب کہ میں نے پزان دایو کو ابھی اس سے اپنے ساتھ لے گیا۔ اس  
ابھی اس نے میرے دھیان کو رہنے کے لئے کوئی ستھان ہی نہ رکھا۔ کایا کے یتر  
سب ہی کچھ دیکھ پایا۔ اپنے بیو آتما کو چت دینی کر دی اور دھینے مرنے  
(کا) شک ہٹا دیا۔

دیا کھیا۔ جب کہ میں نے پزان دایو کو بھلی بھانتر و دہ پور وک  
نہر دھ کر کے اپنے ساتھ لے گیا۔ اس پزان دایو کے ابھی اس نے میرے  
میں کھنہے ہوئے دھیان کو رہنے کے لئے کوئی ستھان ہی نہ رکھا۔ ارتھات  
یہ دھیان آتم سرور میں مل کر لے ہو گیا اور میں نے اس اپنے دہمہ میں  
سینکڑوں جنموں کے کھور شریروں میں اور دھ ہونے کا دہمہ سب کچھ  
دیکھ پایا اور پھر اپنے بیو آتما کو ارتھات اپنے آپ کو یہی ادپر کھت سینکڑوں  
جنموں میں اور دھ ہونے کی چت دینی کر دی اور پر کر تہ بندھن سے چھٹکارا  
کر کے آواگن ارتھات جینے مرنے کا شک سب کچھ ہٹا کر اس کا شودھن کیا  
ارتھات تو پزان ہو جانے پر گیان سے سارے پاپ دھو ڈالے۔

پزمان۔ ایسا ہی دایو پڑشی کہتے ہیں کہ میں نے گریہ داس میں  
دھمتے ہوئے ہمدان بندر بہ روپی دیوتاؤں کے بہت جنموں کو بھلی بھانتر  
پان یا۔ تنو گیان ہونے سے پہلے مجھے انہی جنموں کے اندر سینکڑوں لوہے  
کے سمان کھور شریروں میں اور دھ کر رکھا تھا اب میں شہتی پاکسی کے  
بھانتر ویک سے ان سب کو توڑ کر ان سے الگ ہو گیا ہوں۔ اس پر کار  
بھم جہانتروں کے دہمہ کو جاننے والا وہ دایو پڑشی اپنے اس شریر  
کا ناش ہونے پر سارے اوپر اٹھ گیا اور ادھ گنتی کے دوارا پر دم دایم  
میں چھپ کر اسرت برہم میں مل گیا۔ (ایتر یو اینشد ۱۳/۵)

واؤج گرایا پانس و جھم  
وانس ڈیجھ سورہ رنگ و سن  
دھیانس اندر دم دم میلنس

گوئن تر و دم موثر رت بر (۵)  
میں نے اپنے آپ میں دایو اسی ہی حرکت دیکھ پائی۔ دکان میں



سب ہی رنگ کے دستوئیں دیکھ پائیں۔ میں کہیں کہیں دھیان میں ہی رہن کرتی رہی  
گونی کے لئے کو ا رکھول کر رکھا۔

دیا لکھیا۔ میں نے اپنے شری میں پڑان دایو کی ہی حرکت دیکھ مائی۔  
انہ کرن تنھا بندریوں کے دکان (رگڑا) میں نانا پرکار کی دستار ڈپنی رنگوں  
کے دستوئیں (پٹن ہونے دیکھ پائیں) ارتھات بندریاں اپنے اپنے بندریوں کے  
آرٹھ میں ورت رہی ہیں) تیر تو کھن کھن آتے دھیان میں ہی رہن کرتی رہی  
اور (پر آکر سے اٹھن ہونے ہونے کا منائیں تھا۔ شیت۔ آوش۔ سکھ  
ڈکھ اور مان۔ ایمان) سب ہی گونی کے لئے چاروں اور سے سما جلتے والا  
کو ا رکھول ڈالا۔

پرمان۔ کو ا رکھول ڈالا۔ جیسے سب اور سے پرہ پورج پر تشٹھا  
والے سمدر میں نانا پرکار کی ندیوں کا پانی آ جاتے پر کجیت ماتر بھی اس کو  
چلا ایمان نہ کرتے ہوئے اسی میں سما جاتے ہیں اسی پرکار جس پرش میں سائے  
وٹے کوئی ہی وکار اٹھن نہ کر کے اسی کی شاننی بھنگ کٹی بنا ہی اس  
کے اندر سما جاتے ہیں اسی کو پریم شاننی ملتی ہے۔ وخیوں کے کا منا والے  
کو نہیں (گیتا۔ ۱۲)

پورک۔ کبک۔ پریچک کو رُم

پوش ترا دم پیچھ کئی وکھ ۶۴

انہش بھسم کو رُم

کنہہ نو موتم سوائے چھم کتھ (۶)

میں نے پورک۔ کبک۔ پریچک کیا۔ یون کو ا پر کے اور راستہ  
چھوڑا۔ (ناہت کو بھسم کر ڈالا۔ شیش کچھ بھی نہ رہا۔ وہی میری  
بات ہے۔

دیا لکھیا۔ میں نے پورک۔ کبک اور پریچک تینوں طرح سے پڑان دایو  
کو تیر ددھ کر کے جیت لیا۔

پان کو ا پر کے اور پورنے کا پٹھ چھوڑا۔ ناہت کو بھسم ہی کر  
ڈالا۔ میرے میں شیش کچھ بھی نہیں رہا (ارتھات پیچھ بھوت آتھک شریہ  
اور ایشہ دایر کرتی کا کچھ بھی شیش نہ رہا) وہی یہ میری زعم کی کہانی ہے  
پرمان۔ کوئی یوگی پورک نام پرانا نام ارتھات آیان دایو میں  
پڑان دایو کا ہون کرتے ہیں اور دوسرے کوئی یوگی ریکھ نام پرانا نام  
ارتھات پڑان دایو میں آیان دایو کا ہون کرتے ہیں اور کوئی یوگی  
پڑان اور آیان کی دونوں گتوں کو روک کر کبک نام پرانا نام کیا کرتے  
ہیں اور دوسرے کتنے ہی یوگی جن کا آنا نہت کیا ہوا ہے ایسے پرہ مت  
بھوجن کرنے والے پڑاؤں کو یعنی دایو کے بن بن بھیدوں کو پڑاؤں  
میں ہی ہون کیا کرتے ہیں۔ بھاؤ بہے کر دے جن جن دایو کو جیت  
لیتے ہیں اسی اسی دایو میں دوسرے دایو کے بھیدوں کو ہون کر دیتے  
ہیں۔ یہ سب یگیوں کے جانتے والے اور یگیہ دوا را جن کے پاپ نشٹ  
ہو گئے ہیں۔ فے یگیہ کھنٹہ کلنٹا کہلاتے ہیں (گیتا۔ ۳/۲۹) شکر  
بھاش (دیکھیں) (ناہت کو بھسم کرتا۔ ادھیائے ۵ واکہ ۲۔ نادہت  
دالا پرمان کو پڑھیں۔

گگنس بھوتلس نشو یلہ ڈایو نٹھ

رؤس لھب نہ روزلس شائے

سوریر کے پر بھاؤ وختے زونم

زل کو بھلس سیت میلک کیا ۵ (۷)

جس وقت کریں نے مگن اور بھوتل میں نشو کو ہی سھت دیکھا



اس وقت روہ کو رہنے کے لئے کوئی سٹھان ہی نہ رہا۔ پھر میں نے سویرہ کے پر بھاؤ سے سارا دھتھرے جان لیا۔ زلزلہ تھل کے ساتھ مل کر لئے ہو گیا۔  
 دیا کھیا۔ جس وقت کہ میں نے تپسیا کرتے کرتے یوگ جگھت ہونے پر آکاش اور پرتھوی ارتھات سارے تر بھول میں پرہم شو کو ہی سہت دیکھا۔ اس وقت شریر کے پر کا شک آتا روپی سویرہ کو رہنے کے لئے کوئی سٹھان ہی نہیں رہا۔ ارتھات جیو آتم بھاؤ گل کر پر ماتم سروپ ہی بن گیا۔ پھر میں نے اسی پر ماتم روپ سویرہ پر کاش کے پر بھاؤ سے یہ سارا دھتھرے جگت گیان سے پہچان ڈالنا سمجھ کر یہ زلزلہ منے جیو آتما قبل ارتھات اپنے مول کارن پرہم تو میں ہی مل کر لئے ہو گیا۔  
 پرہم مان۔ اس واکیرہ میں (زولس) یہ شبد جیو آتما کے لئے پر جگھت ہوا ہے۔ تا سویرہ کے بھانترہ ماسے شریرہ میں ایک اور الفت ہے (دیکھو گیت ۱۱۱) شکر بھاش) پر کرتہ گنوں سے شریرہ میں باندھے جانے کے کارن آتما کو جیو۔ بھتر کر اور جیو آتما کہتے ہیں۔ وہی پھر پر کرتہ گنوں سے مکت ہونے پر پر ماتم روپی بنا کر تلبے (دہا بھارت شانترہ پرہم ۱۸۷)

گور کتھ ہر دیس منتر باگ رٹ  
 گنک نل ناوم تن تہ من  
 شو دہمیر زیون مکتی پر اوم  
 نیم جھنے ٹرٹم یوٹم اکھ (۸)

گور دی بات ہر دے کے بچ میں پکڑی۔ گنگا جل سے تن اور من کو مانج ڈالا۔ اسی دہمیر سے جیون مکتی پر اپت کی۔ ہم کا بھٹے ہٹ گیا اور ایک کی پالن کرتی رہی۔

دیا کھیا۔ میں نے گور دہاراج کے کئے ہوئے من اور بندریوں پر

دجئے پلنے کا تھا برہم روپ کے تو دو یوگ پوروک ایسا س سادھنا ایتارہ سمجھائے ہوئے اپدیش شبدوں کو درٹھ لکھتے تھا شبد بھاؤنا سے اپنے ہر دے میں دھارن کیا اور (پرہم روپی ششہ رس کے) گنگا جل سے اپنے انترہ کرنوں اور من کے سارے کامن آدہ واسناؤں کے میل کو اچھی طرح (ناوم ارتھات) مانج کر صاف اور شبدہ کر ڈالا۔ ایسا کرنے پر میں نے اسی دہمیر میں جیون مکت پدوی پر اپت کی اور آواگن روپ جھنے۔ مرنے والا ہم راج کا بھٹے آدے آت تک سب ہٹ گیا اور ایک پرہم پرہم شو کی پالن ارتھات اپاسنا کرتی رہی (اس واکیرہ میں ورنٹ گنگا جل کو آپ ادھیائے ۷ واکیرہ ۳-۴-۵ میں پرٹھ کر دھاریں۔

اوم کار شریرہ کیول زونم  
 شبد پریش۔ روپ۔ رس۔ گندہت  
 آتم سروپ سویائے اوسم  
 پرہم ترٹ دو رٹم شیرس پیٹھ (۶)

شبد۔ پریش۔ روپ۔ رس اور گندہ کے بہت اپنے شریرہ کو کیول اوم کار ہی جاتا۔ شریرہ کے بیتر آتم سروپ بھی وہ آپ ہی تھا۔ پرہم تو کو مکت پر دھارن کیا۔

دیا کھیا۔ شبد۔ پریش۔ روپ۔ رس اور گندہ ارتھات چھشو۔ شو تر آدہ گیان بندریاں داک آد کر م بندریاں تھا من انترہ کرنوں کے بہت اپنے شریرہ کو کیول اوم کار ہی جاتا اور اس میرے شریرہ کے بیتر پر کاشت کرنے والا آتم سروپ بھی وہی اوم کار پرہم پرہم آپ ہی سہت تھا جو کچھ بھی پر اپت کرنا ہوتا ہے اس پرہم تو کو سادھ یوگ میں سہت ہو کر اپنے مستک پر دھارن کیا۔



یہ زمان۔ سب یزیدیوں کے داروں کو روک کر اور من کو ہر دئے میں  
نیز دھ کر کے انتھات سنگھپ وکلیپ سے بہت ہو کر اور اپنے پرائوں  
کو مستک میں سٹھاپن کر کے سادھ یوگ میں سخت ہوا سادھک اوم اس  
اک اکھر روپ برہم کے سروپ کا لکھیہ کرانے والے اوم کار کا اچازن کرنا  
ہوا اور مجھ پریشور کا چٹن کرنا ہوا جو پرش شریہ کو تیاگ دیتا ہے اسی  
برہم گتی ملتی ہے (گیتا ۱۱/۱۲)

کو سُم باغس یمو تمئے اژن  
پتر یئے من نہ اژن پرا  
سروپ درشن چھو تنوی اژن  
کت چھوئی گزھن پکن ترا (۱۰)  
میں کو سُم کے باغ میں گھسنے لگی ہوں۔ بدھ تمہارا من بھروسہ کرے  
تو بہتر گھسنے کی پراپتی کر۔ ادھر گھسنا ہی سروپ کا درشن کرنا ہے کہاں  
تم نے جانا ہے۔ چلنا چھوڑ دے۔

دیا لکھیا۔ میں سادھ یوگ میں سخت ہو کر اپنے ہر دئے روپی کو سُم  
کے باغ میں گھسنے لگی ہوں۔ بدھ تم کو اپنے من اور پرشادات پر بھروسہ  
سے تو تم بھی اپنا سنا کر کے سادھ یوگ میں سخت ہو کر اس اپنے بہتر دالے  
کو سُم باغ میں گھسنے کی پراپتی کر اس کے بہتر گھسنے پر ہی تم کو آتم سروپ  
برہم کا ساکشات کار پر اپیت ہوگا۔ ہی مورکھ اس امرت پھل کے باغ کو  
تیاگ کر کہاں تم کو جانا ہے تم اس اپنے اودیا نارگ میں چلنا چھوڑ دے  
یہ زمان۔ اپنے ہی بہتر سخت اس برہم کو سدا سروہ دا جانا  
چاہیئے۔ کیوں کہ اس سے برہم کر جانے یوگیہ تو دوسرا کچھ بھی نہیں ہے۔  
بھوکتا (جیو آتما) بھوگیم (جدو رگ) اور ان کے پیرک پریشور۔ ان تینوں کو

جان کر منش سب کچھ جان لیتا ہے۔ اس پر کار یہ تین بھید دلائیں بتایا ہوا ہی  
برہم ہے (شویتا شوتر اپنشد ۱۱)

واکھ سدا نہ بودت موکھس بیٹھم  
سوکھس ڈیٹھم روزنس شاے  
وکھس اندر اندر میٹھم  
بدھ بیلہ نہیٹھم میٹھم کتھم (۱۱)  
آبادیوں سے نکت ہونے پر داکھ سدا میرے مکھ پر بیٹھی۔ تب  
میں نے مکھ کو رہنے کا ستھان دیکھا۔ دکھ کے اندر ندرا میں میٹھاس  
پڑ گیا۔ بدھی جب دسترت ہو کر پھیلنے لگے پھر داکھ میں بھی میٹھاپن آ گیا۔  
دیا لکھیا۔ راگ تھا آنتہ کرؤں کے سروہ آبادیوں سے نکت  
ہونے پر پھر داکھ سدا میرے مکھ پر آ کر بیٹھی۔ تب پھر میں نے آد آتک  
مکھ کو اپنے آپ میں رہنے کا ستھان دیکھ پایا۔ اور اس سدا روپی اور ان  
کے دکھ میں سوشیتی تندر کے ادھتھا کا پریم مکھ روپ میٹھاس ہونے  
لگا جب کہ نشیجے آتک بدھی برہم گیان میں دسترت ہو کر پھیلنے لگی۔ تب  
پھر داکھ دانی میں بھی میٹھاپن آ گیا۔

منس ستی منئے گندم  
چمتس رٹھم چو یاری وگ  
پر کر رچ سکتی پریش نو و لم  
سمرہ مہہ کو رٹھم لٹھم و تھہ (۱۲)  
من کے ساتھ من کو باعدہ ڈالا۔ چت کی چاروں اور سے رگام  
پکڑی۔ پر کرتی کے ساتھ پرش کو نہیں لپیٹا اور میں نے اس کو دگیان میں



لایا اور مارگ کو پایا۔

دیا کھیا۔ میر نے اس اپنے منکلب و کلپ آتمک من کو اسی اپنے من سے درڑھ نگرہ کر کے باندھ لیا اور چت کو چاروں اور نکل جلنے میں اپنے آتم چیتن روپی دگام میں دوش کر کے مضبوط پکڑے رکھا پُرش کو (ارتھات اپنے آپ کو) پر کرتہ گنوں کے سنگ میں نہیں لیٹا۔ کھوج اور دچار کر کے پر ماتما کے سر روپ کو بڑیاں سے جاننے میں لایا۔ ایسا کرنے پر برم پد کے مارگ کو پایا۔

پرمان۔ من کے درڑھ نگرہ کرنے میں من ہی سحر تھ ہوتا ہے۔ ترشنا روپی گڑھ سے پکڑے ہوئے سنار سمدر میں پڑے ہوئے بھنوروں سے پھیراں کھلتے ہوؤں کے لئے اپنی من روپی ناؤ کی دُور ہے (ہو اُپنشد) کا رہ ارتھات دھمیر کے اور کرن ارتھات بندریوں کے کرتاپن کے لئے پر کرتہ کارن کی جاتی ہے اور شکھ اور دُکھوں کو بھونکنے کے لئے پُرش کارن کہا جاتا ہے۔ پُرش پر کرتہ میں سچت ہو کر پر کرتہ کے گنوں کا اُپ بھوگ کرتا ہے اور پر کرتہ کے گنوں کا یہ سنیوگ ہی پُرش کو بھلی بڑی یونیوں میں لپیٹ کر جہنم لینے کے لئے کارن ہو جاتا ہے (گیتا ۲/۲۰)۔

کامس سستی پرے نو برم  
کرودھس دغم پونن فیش  
کو بھس ہو مس جرن ترٹم  
ترشنا ترجم گیش خوش (۱۳)

میں نے اس کام کے ساتھ پرورتی نہیں لگائی۔ کرودھ کو یوں سے ہی مٹا دیا۔ لوکھ اور مومہ کے چرن ہی کھڑے۔ ترشنا ہٹ گئی اور میں آنندت ہو گئی۔

دیا کھیا۔ میں نے کبھی بھی دُشیوں کے آسکتی میں پر کرتہ اس کام روپی شتر کے ساتھ اپنی پرورتی نہیں کی اور کرودھ کو یوں سے ارتھات انتہ کر نوں کے دُش کرنے اور سو دچار ارتھات آتم دچار روپی۔ یوں کے بل سے اندر ہی مٹا دیا۔ تھھا لوکھ اور مومہ کے آتین ہونے پر اُن کے آگے بڑھنے کے چرن کاٹ ہی ڈالے ارتھات لوکھ اور مومہ کو آتین ہونے ہی نہ دیا۔ ایسا کرنے پر آپ ہی آپ ساری ترشنا ہٹ گئی۔ اور میں برم آنند میں مگن رہی۔

پرمان۔ یہ کام جو سب لوگوں کا شتر ہے جس کے نبت سے جیوؤں کو سب آنر تھوں کی پر پتی ہوتی ہے وہی یہ کام کسی کارن سے بات ہونے پر کرودھ کے روپ میں بدل جاتا ہے اس لئے کرودھ بھی ہو جاتا ہے۔ تھھا یہ کام بہت کھانے والا پیٹھ ہے۔ اس لئے کہا یا پیلے۔ کیوں کہ کام سے پیٹرت ہو اُپنشد پاپ کرتا ہے اس لئے یہ ویری اور شتر بھی ہے اور سنا جاتا ہے کہ ترشنا ہی ہم سے یہ اموک کا رہ کر دالہ ہے (گیتا ۱۲/۱۱) شکر بھاشا اس کے بعد ادھیائے ۹ واکہ ۱۲۔ اور گیتا ۶/۱۷ اور گیتا ۱۱/۱۱ میں پڑھ کر کام۔ کرودھ لوکھ کی اپتی اور دُش کرنے کو دچاریں۔

منس گرے تراج پڑھ کوئی ان کھوم  
توہ کوئی بن گوم کر مس کرے  
آکر واتھت امرت زل چوم  
شونے من گوم برمس پرے (۱۴)

سو کرت ان کھانے سے میرے من کو (سنار بھاونا کے سنگلیا) شک ہٹ گیا۔ اسی کا بل پراپت ہو کر میں نے (ادھیائے روپ) کر یا کئی چھ مرال آدھار پر پہنچ کر میں نے امرت جل پیا۔ من دُش ہو کر بشو سے



ہو گیا اور میں بھی پریم میں لگن رہی۔

ویا کھیا۔ سو کرت ارتھات سہائی کا آن (کیسا) جو انیائے وغیرہ  
کا نہ ہو۔ چور جھلسا دکا نہ ہو۔ لوٹ مار کا نہ ہو۔ ایتادہ (پھر وہ آن کیسا  
ہو) جو محنت سے کیا ہوا ہو یا سادھک نے بکھیا کر کے لایا ہو۔ وہ بھی  
کیسا ہو جو اس دان دینے والے دانے محنت سے شدھ کیا ہوا۔  
ایشوری کہتی ہے کہ ایسا ہی آن کھانے سے میرے من کو سنار بھادنا  
کے دشیول والا سنگھ کا شک ہٹ گیا۔ اسی سے پھر میرے شر۔ بر  
میں آتم بل پر اپت ہو کر تب ہی میں نے پرمانا کی سادھنا کی۔ سادھنا  
کرتے کرتے آتم ساکشات کار کے مول آوار پر چنچکر میں نے آتم  
سرورپ آند کا امرت شے جل پیا اور من سرورنا و شدھ بن کر پریم شدھ  
کے ساتھ ہی لے ہو گیا اور میں بھی اُس پریم کی پریم میں لگن رہی۔

زخم پر اوت کرم سو دم  
دھرم یو لم سوئے اچھم ست  
نیترون اندر پریم دا دم  
ژد دم تہ موغم ایہوی اکھا (۱۵)

جہم کے پر اپتی ہونے پر میں نے اکرم سادھا۔ دھرم کو پالا۔ میرے  
میں وہی ستا ہے۔ نیتروں میں پریم دھارن کیا۔ اسی ایک کو چن  
بھی لیا اور پھر اسی کو مان بھی لیا۔

ویا کھیا۔ جہم کے پر اپتی ہونے پر میں نے برہمن سو بھاؤ جہن کرم کو  
سادھا اور دھرم کی پالنا کرتی رہی میرے میں وہی دھرم اور کرم سے  
پر اپت ہوئی۔ آتمک ستا ہے اور اپنے نیتروں میں سارے پرانیوں کو  
ایک لے سے جان کر پریم دھارن کیا اور اسی ایک ایکٹا والے کو کھوج دھا کر کے

چن بھی لیا اور اسی ایک کو مان بھی لیا۔

پرمان۔ شتم۔ دم۔ تب۔ پوترتا۔ شامتی انپہ کرنوں کی نرلتا۔ تنھا  
اُدھیائے گیان اور وگیان۔ شاستر کے دچوں میں دشوا س۔ یہ برہمن کے  
سو بھاؤ کرم ہیں (گیٹا ۱۸)

کایس اندر رو دم اثرت  
نیایس تھو نم ژدواری شاکے  
پائے کنہہ کو نم نوئے جھس کرت  
زایس نہ آیس موگم ناؤ (۱۶)

دہ (برہم) میرے کایا کے بتر سخت ہو کر ٹھہرا۔ نیائے کے  
لے چاروں اور سے میرے کو کھلا ستھان رکھ چھوڑا۔ جب کوئی ایلے  
ارتھات پہنچ نہ پائی تو پھر میں پریم میں لگن رہی نہ تو میں پیدا ہی ہوئی  
اور نہ تو (سنار) میں آئی۔ نام تو لگ گیا۔

ویا کھیا۔ وہ پر برہم میرے کایا کے بتر آتم روپ سے پریش  
کر کے سخت رہا اور پھر اپنا نیائے کرنے کے لئے۔ کہ میں ایسا کایا کے بتر  
کون ہوں۔ میرا سرورپ کیا ہے ایسا نیائے کرنے کے لئے مجھے چاروں اور  
سے کھوج اور دھا کر کے کا کھلا ستھان رکھ چھوڑا۔ جب نیائے سے  
ارتھات بدھی گیان اور دھرم سے بندوبست سے اور شاستروں کو  
پرٹھ اور من کرنا پڑا پر مانہ تنو کا گیان۔ وگیان ورن کرنے سے  
کروہ پرمانا ایسا ہے ویسا ہے۔ اس طرح اس کے پر اپتی کرنے کا  
کوئی ایلے نہ پایا۔ ارتھات کوئی پہنچ ہی نہ پائی۔ تب اُس پر مان دیو  
کی پر اپتی کرنے کے لئے وشدھ انپہ کرنوں سے نرتر اسی کا چلتن  
کرتے دھیان اور بھکتی دوارا آتم پریم میں لگن رہی۔ جب دھیان کرتے



کرتے گیان کے زلمت سے اس پریشور کو دیکھ پایا سمجھو کہ نہ تو میں پیدا ہی ہوئی ہوں اور نہ میں منسا میں آئی ہوں۔ مگر نل ایسا نام تو لگ ہی گیا۔ (یہ جیون ملکٹ اوستھا کہلاتی ہے۔ دیکھو ادھیائے ۲۰-۲۹)

پرمان۔ وہ پرمانا نہ تو نیتوں سے۔ نہ دانی سے اور نہ دوسرے پندریوں سے ہی گہن کرتے ہیں آلتے۔ اس پرمانا کو تو دسندھ انہہ کرفوں سے نہ نتر اسی کا دھیان کرتا ہوا۔ گیان کی زلمت سے سادھک دیکھ پاتا ہے (مندوک اپنشد ۳-۱) یہ پربرہم پرمانا نہ تو بہت پرکار شاستروں کے پڑھنے سے نہ تو بہت سننے سے ہی پراپت ہو سکتا ہے یہ پرمانا جس کسی بھکت کو سوسکار کر لیتا ہے اس کے دوارا ہی پراپت کیا جاسکتا ہے۔ یہ پرمانا اس کیلئے اپنے پتھار تھ سروپ کو پرکٹ کر لیتا ہے (مندوک اپنشد ۳-۲)

کر یا۔ کریم۔ دھرم۔ کورم  
نیرتھن۔ نادرم۔ پتھن۔ کاکے  
پاچن۔ سو نیرتھ۔ بھسم۔ کورم  
شترے کس اوس تے بیت سکم آکے (۱۷)

میں نے کر یا۔ کریم اور دھرم کی پالنا کی۔ تیرتھوں میں اپنی کایا کا شودھن کیا۔ سارے پاؤں کو اکٹھا کر کے بھسم کیا۔ دہاں کون تھا۔ اور یہاں کون آئے۔

ویا کہیا۔ میں پریشور کو پراپتی کرنے کے لئے جب۔ دھیان۔ پراپن اکیاس روپی کر یا اہتات سادھنا کرتی رہی اور سوبھاؤسے آچن ہوئے گنوں کے دوارا سب برہمن سوبھاوک کریم کرتی رہی اور دھرم کی پالنا کرتی رہی اور تیرتھوں پر جا کر اپنی کایا کا شودھن کیا۔ اس طرح سے سب پاؤں

کو پور کر اہتات اکٹھا کر کے بھسم ہی کر ڈالا۔ سینکڑوں جنموں کے پاؤں اور داستانوں کی نیورتی ہونے پر مجھے پر مبدھی پراپت ہوئی۔ آتما کا یعنی اپنے آتم سروپ کا پورا نشیجے ہونے پر گیات ہوا کہ دہاں پر لوک میں کون تھا اور یہاں سنسا میں کون آئے۔

پرمان۔ راجہ جنک اپنے گورد دیو سے کہتے ہیں ہے گورد دیو تو گیان حاصل ہونے پر میں پورن شانتی کو پراپت ہوا ہوں اب مجھے کوئی شک ہی نہیں رہا۔ اپنے سروپ کا ہما میں استھت ہونے سے مجھ کو اب دھرم کہاں۔ ادھرم کہاں۔ شجھہ اور اشجھہ کہاں۔ بھوت کہاں بھوشیت کہاں۔ درتمان کہاں۔ سوچن کہاں۔ سوچنتی کہاں۔ جاگرت کہاں۔ تریا کہاں اور بھگتے کہاں۔ دور کہاں۔ نزدیک کہاں۔ باہر کہاں۔ بھیتر کہاں۔ شتھول کہاں۔ سوکشم کہاں۔ مرتو کہاں۔ جیون کہاں۔ ملکٹ کہاں۔ سنسا کہاں کریم کہاں اور سادھی کہاں دشتری اشٹا ذکر گیتا آتم و شرانت اور جیون ملکٹ اوستھا۔

شران تے دھیان کیا سن کرے  
چتس رٹ تر کرئی وگ  
منس تہ یونس بلون کرئی

۹۵

(۱۸)

جہنر سنان اور دھیان کیا کرے گا۔ اپنے جت کی لگام کھینچ کر بکڑے رکھ (یہی تھاکے) من اور پراپن کا ملاٹ کرینگا پھر تم اپنے آتم سوبھاؤ امرت کنڈ میں تیرتھ سنان کر۔

ویا کہیا۔ ادھیاتمک اپاسنا سے رہت اور دیا کے بہتر ستھت ہو کر سکام کرموں میں بہت بہت پرکار سے ورت کرتم کو یہ تیرتھ سنان اور



دھیان کون سا پر ماتھ کا لاکھ کریں گے۔ تم پہلے دیشیہ واسناؤں میں  
گن کرنے والے اس اپنے جت روپی گھوڑے کی لگام درھتا سے مضبوط  
پکڑے رکھ ہی تھاے من اور (پون) پران کا ملاوٹ کرے گا۔ تم پھر  
آند سے اپنے آتم سروپ امرت کنڈ میں گیان امرت جل کا تیرھ سنان کر  
(جب من باہر بند ریوں کے دیشیوں کا چنن کرنے لگتا ہے تب وہی چرت  
بن جانتا ہے اور جب بند ریوں کے دیار آرمہد ہونے لگتے ہیں۔ سناکھ  
شاستروالے اسی کو پران کہتے ہیں۔ سناکھ کار کا ۲۹۔ اسی کو سوامی  
پرمانند جی نے بول کہا ہے (بڑا ایک دھڑلے سے پڑان) اس کے بعد  
ادھیائے ۵۔ واکھیہ ۱۸۰۱۷ میں جت کے سروپ کو پڑھ کر دھار کریں۔

پرمان۔ نہلے دھوئے کیا ہوا جو من میں میل سمائے  
میں سدا جل میں ہے دھوئے باس نہ جلائے  
تیرھ برت کر جگ مٹا ٹھنڈے پانی نہائے  
ست نام جلتے بنا کال جگت جگ کھائے (کبیر)

منس گن چھوئی چچیل آسن  
چلتس گن چھوئی گزھن دور  
چھوس گن چھوئی بوچھ تریش سمن  
آمنس گن چھوئی نہ آسن لیف (۱۹)

من کا گن منکلیپ وکلیپ روپ چچلتا کا ہونا ہے اور جت کا گزھ  
ہے (لاکھوں یوزن) دور چلا جانا۔ جیو کا گن ہے جھوک اور پیاس سے  
بیرت ہونا۔ آتما کا گن ہے کسی قسم کا لیف نہ ہونا۔  
پرمان۔ چچلتا سے بہت من کہیں بھی نہیں دکھائی دیتا۔ جیسے اگنی  
کا دھرم گری کا پرچند ہے اسی پرکار من کا دھرم چچلتا ہے۔ یہی چچیل

سپند شکتی جت کے دوسرے روپ میں سمجھتے ہیں جو من کی یہ چچلتا ہے  
وہ پر اکرتہ واسنا سروپ ادھیائے ۱۔ اس چچلتا کو دھار سے ناش کر دو  
جو من چچلتا سے بہت ہے وہ امرت کہلاتا ہے وہی شکتی کہلاتی ہے  
(ہوا پنبش) جب یہ من باہر دیشیوں کا چنن کرنے لگتا ہے تب وہی  
جت کہلاتا ہے (ہما بھارت شانتر پر ۲۷۴) آتما کی برلیفتا۔ گیتا  
۲/۱۸ تک پڑھ کر دھاریں۔

کائس بل چھوئی مائس زاگن  
پرائس بل چھوئی شبد سروپ  
سائس بل چھوئی تتو ود زانن  
گائس بل چھوئی آدانت تانن (۲۰)

کا یا کا بل ہے سب کے ساتھ پریم درشن کے تاک میں رہنا۔ پران کا  
بل ہے شبد سروپ۔ آریو کا بل ہے۔ تو کی ودی کو جانتا۔ گیان کا بل  
سے انت تک رہنا ہے۔

دیا کھیا (۱) سب کے ساتھ پریم سے لونا۔ پریم سے درتنا۔ بات چیت  
پریم سے کرنی۔ جس سے اہم بھاؤ مٹ جاتے اور دوسروں کو بھی شانتی ہوتی  
اور اپنے آپ کو بھی شانتی آجاتی اس طرح سے من پرین۔ وہ کرشن میں  
بل اپن ہوتا ہے (۲) جو سب میں سارا دستو ہے جو مٹھا نہیں ہے۔ جو غیر  
نرم تر بنا رہتا ہے وہی بھگوان کا کھیم روپ ہے اسی کو سروپ کہتے ہیں  
دستو میں وہ سروپ نمایاں ہے پر اس کا گیان کرنے کے لئے اس میں  
نام نریش کیا جاتا ہے۔ وہ نام نریش کیا ہے۔ بھگوان کو پراپتی کرنے  
کے لئے اوم کار جپ۔ شتو۔ نارائن۔ واسیو۔ کرشن۔ رام۔ ایتادھ کے تمام  
کا جپ بھگوان کی وید خدوتیوں سے استوتی کرنا۔ بھگوت۔ جگن۔ مہم جپ



۲۷ - جیو کا نور و کہا ہوا میرا رکھ سہی دوست

و یا کھیا کہ نہ تھی ارتقاات انت (اور تھر) بر جو کچھ بھی ہے کسی نہیں ارتقاات بر سار یا با رجت  
سویں کی و ستر اور گند و نگر کے سمان دیکھتے دیکھتے نشٹ ہونے والا اور جسا دیکھا سٹھا جانا  
ہے تو گیان ہونے پر و بسا نہیں پایا جاتا۔ ایسا و گیان و چار میں لا کر کس کر کے تم اس  
سنا ر و دینی کا مائل کے اوپر نا راج ہے تم نہیں اس سنا ر کے موعہ میں پر و کچھ بھی کاشیش  
ارتقاات ادھیاتم گیان پر مار تھکا لا بھنچ کر ہے گا ہی نہیں تم یہ اپنا او دیا کے بتر بہت  
ہوت پر کار سے ورتے کا اپنا چھوڑ دے واپس لوٹنے پر ارتقاات دھم یہ تیگ کرنے  
پر تم نے اسی یا با رجت سنا ر و دینی آواگن جنم و مرن میں بار بار گھسنا ہے۔ یہی  
میرا و حین و گیان ایدیش) یاد رکھو۔